मुद्रित—
श्रीकृष्ण छापाखाना, उदयपुर

❀ समर्पण ❀

श्रीमान् पूज्यवर श्री १०८ आचार्यवर्य

श्रीशांतिसागर स्वामिन् !

यह भक्तामरशतद्वयी आपके ही प्रसाद
से लिखी गई है इसलिये आप-
के ही पवित्र कर कमलोंमें

समर्पित है ।

कातिक शुक्ला
१ वी० नि० सं०
२४६१

श्रीमच्चरणसरोरुहसेवी
विनम्र आज्ञाकारी
लालाराम जैन शास्त्री
मैनपुरी

॥ श्री ॥

श्री १०८ श्रीजगद्गुरु-सर्वज्ञकल्प-षट्त्रिंशद्गुण सुशोभित पूज्यपाद श्री आचार्य शान्तिसागर महाराज [दक्षिण] के संघ का चातुर्मास उदयपुर [मेवाड़] के भव्यजीवों के महान पुण्योदयसे यहा पर हुआ है। आपकी मूर्तिके दर्शन मात्र से सम्यक्त्व और चारित्र की प्राप्ति सुतरा होजाती है। गुरु भक्तिसे इस प्रान्तकी जैन जनता का महान कल्याण हुआ है। अतएव इस चातुर्मास रूपी गुरुवर्यकी पुण्यस्मृतिमें यह भक्तामर-शतद्वयी ग्रन्थ ज्ञानावरण कर्म के क्षयार्थ प्रकाशित किया है।

कार्तिक सुदी १
वीर निर्वाण सं० २४६१

श्रीआचार्यचरणकमल सेवी—
रूपलाल मोतीलाल मींडा
उदयपुर (मेवाड़)

प्रस्तावना

इस संसारमें भगवान अरहन्तदेवकी भक्ति सर्वोत्कृष्ट और परम पवित्र है। यह भगवान अरहन्तदेवकी भक्ति मुनिराज और श्रावक दोनोको इस पंचपरावर्तन स्वरूप संसारसे पार कर देनेवाली है। इस परम पवित्र अर्हद्भक्तिका आनन्द भगवान समन्तभद्रस्वामीके वचनोमें पद पद पर प्राप्त होता है। श्रावकोंके लिये यह अरहन्त भक्ति नितान्त आवश्यक और प्रति समय चिन्तवन करने योग्य है।

भला हो बेचारे बेलगाम केशका जिसके प्रसादसे पूज्यवर आचार्यवर्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराजके पवित्र दर्शन हुए। उनके दर्शन करनेसे हृदयमे भरी हुई वह जिन भक्ति ऐसी बढायी जैसे चन्द्रमाको देख कर महासागर बढ़ता है, उसी बढ़ी जिन भक्तिका फल यह भक्तामर-शतद्वयी है।

श्रीभक्तामर महाकाव्य एक महा पवित्र स्तोत्र है। उसमे प्रत्येक कार्यकी सिद्धि करनेके लिये महामन्त्र शक्ति भरी हुई है। विघ्न विनाशक शक्ति भरी हुई है और न जाने क्या क्या और कितनी शक्तिया भरी हुई है इसलिये वह काव्य तो अनुपम है। उसके समान न तो आजतक बना है, और न इस युगमें बन सकता है। उसका पाठ करना वा सुनना दोनो ही महा पवित्र है, समस्त विघ्नोंको दूर करनेवाले है, और महा पुण्य उत्पन्न करनेवाले है।

अतएव यह निश्चित रूपसे सिद्ध है कि मेरे लिखे हुए पद उसकी समानता तो कभी रख नही सकते। इसके सिवाय

❀ रचयिताका संक्षिप्त परिचय ❀

यू. पी प्रान्तमें आगराके निकट एक चावली गांव है। वह है तो छोटा परन्तु है सुन्दर। इसी गांवमे पद्मावती पुरवाल जातिके भूषण स्वरूप लाला तोतारामजी रहते थे, वे जैसे धर्मात्मा थे, वैसे ही अनुभवी अच्छे वैद्य थे, और जैसे सज्जन थे, वैसे ही परोपकारी थे। यही कारण था कि वे गांवके शिरोमणी गिने जाते थे। आपने इस असार संसारको वि० स० १६६५ में छोड़ा था।

आपके छः पुत्र हुए।

१ लाला रामलालजी—आप आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करते हुए घर पर व्यवसाय करते रहे। आपका स्वभाव बहुत ही मिलनसार और उत्तम था। आप बड़े धर्मात्मा थे। आपने वि० स० १६७० में अपने नश्वर शरीरको छोड़ा।

२ लाला मिट्ठनलालजी—आप घर पर रह कर व्यवसाय करते हैं। आपने बाल्य-जीवनमें कुछ दिन अलीगढ़की पाठशालामें संस्कृत भाषाका अभ्यास किया था।

३ इस स्तोत्रके रचयिता "धर्मरत्न" पं० लालारामजी शास्त्री।

४ प० नन्दलालजी शास्त्री वा मुनिराज श्रीसुधर्मसागरजी महाराज। आपने वीर निर्वाण स० २४५४ के फाल्गुन मासमें जबकि श्रीसम्मेदशिखरजी पर इतिहास प्रसिद्ध पञ्च कल्याणक

दिन तक शास्त्रार्थ कर बड़ी शानदार विजय प्राप्त की थी। उसी समय वहांके अग्रवाल, खंडेलवाल, पद्मावती पुरवाल आदि समस्त पञ्चोंने मिलकर आपको "वादीभ केसरी" की सुप्रसिद्ध उपाधि प्रदान की थी। इसके सिवाय 'न्यायालङ्कार" और "विद्या वारिधि" की उपाधिया भी आपको प्राप्त है। श्रीभारत वर्षीय दि० जैन महासभाने आपकी अनुपम सेवासे प्रसन्न होकर "धर्मवीर" की सम्मान्य उपाधि प्रदान की है।

इस समय आप दि० जैन समाजमें एक अच्छे माननीय कर्णधार विद्वान् हैं। आपने वर्षो तक उक्त महासभाके मुखपत्र साप्ताहिक जैन गजटकी सम्पादकीका जिम्मेदार कार्य बड़ी सुयोग्यतासे किया है। तथा अधार्मिक वातावरणको हटाते हुए धर्मका उद्योग किया है।

आपने पञ्चाध्ययी पुरुषार्थ सिध्द्युपाय और उत्तरार्द्ध श्रीराजवार्तिकालङ्कारकी अत्यन्त विस्तृत और स्वतन्त्र टीकाएं लिखी हैं जिनमें प्रत्येक पदार्थका विवेचन बड़ी योग्यता और सरलताके साथ किया है।

इस समय आप श्रीगोपाल दि० जैन सिद्धान्त विद्यालयका कार्य सहायक मन्त्रीके नाते बड़ी योग्यता तथा जिम्मेदारीके साथ चला रहे हैं। साथमें श्री भा० व० दि० जैन महासभाश्रित परीक्षालयके मन्त्रित्वका कार्य भी बड़ी योग्यताके साथ चला रहे हैं।

आपके परोपकारके उत्तमोत्तम कार्योंसे गवालियर स्टेट भी बहुत प्रसन्न है। इसीलिए गवालियर स्टेटने आपको सेकण्ड क्लासके पावर देकर आनरेरी मजिस्ट्रेट नियत किया है।

६ बाबू श्रीलालजी जौहरी—आप इस समयमें जयपुरमें रह कर जवाहरातका व्यवसाय करते हैं। कलकत्ता बम्बई आदि शहरोंके जौहरी भी आपको अच्छा मान देते हैं। इस समय आपके दो पुत्र हैं।

इस ग्रन्थके रचयिता "धर्मरत्न" पं० लालारामजी शास्त्री समाजमें एक प्रसिद्ध विद्वान हैं आपने अनेक गम्भीर संस्कृत महान ग्रन्थोंकी बड़ी सरल स्पष्ट हिन्दी टीकाएं की हैं। तथा ग्रन्थोंके मर्मस्थलोंको बहुत उत्तमतासे स्पष्ट एवं विशद किया है। आपकी टीकाओंमें ग्रन्थका कठिन भाग भी सरलतासे समझा दिया जाता है।

आपके द्वारा टीका किये हुए बहुतसे ग्रन्थ हैं, जिनमें कुछके नाम इस प्रकार हैं।

आदिपुराण उत्तरपुराण, शान्तिपुराण, धर्मामृतश्रावकाचार प्रबोधसार, चारित्रसार, आचारसार, धर्मप्रश्नोत्तरश्रावकाचार, जिनशतक, पात्रकेशरीस्तोत्र, सशयिवदन विदारण, लघीयस्त्रय, गौतमचरित्र सूक्तिमुक्तावली, तत्वानुशासन वैराग्यमणिमाला, द्वादशानुप्रेक्षा दशलाक्षणिक जयमाल पोडशकारण बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, आलापपद्धति सुभौमचरित्र, चतुर्विंशतिसंधान दशभक्त्यादि संग्रह लाटीसंहिता।

इसके सिवाय आदिपुराण की समीक्षा की परीक्षाके दोनों भाग बालबोध जैनधर्म ३–४ भाग क्रियामंजरी आदि अनेक छोटी मोटी पुस्तकें आपने लिखी हैं जिनका प्रभाव जैन

समाजपर बहुत अच्छा पड़ा है। आपने इन महान् ग्रन्थोंकी सरल हिन्दी टीका करके समाजको जो लाभ पहुंचाया है, तथा हिंदी साहित्य की जो उन्नति की है उसके लिये यह समाज आपका सदैव ऋणी रहेगा।

, आप जैन गजटके सम्पादक भी रह चुके हैं, तथा वर्तमानमें श्री भा दि. जैन महासभा के सहायक महामन्त्री ह। उक्त महासभाने आपकी दूरदर्शिताकी पूर्ण निपृस्ह सेवासे प्रसन्न होकर आपको " धर्मरत्न " की महत्वशालीनी उपाधिसे विभूषित किया है। आप श्री. भा दि जैन शास्त्री परिषद्के सरक्षक भी है आपके पुत्रका नाम चि० राजेन्द्रकुमार है। आपने यह ग्रन्थ वी० नि० सं० २४५६-६० में निर्माण किया है।

श्री पडितजीकी यह साहित्य सेवा जैन साहित्यके प्रचार के लियं पूर्ण सहायक हुई है। जैन समाज हृदयसे अपने महोपकारीका अभिनन्दन करेगा, हम पडितजी का सादर अभिनन्दन करते हैं।

निवेदक—

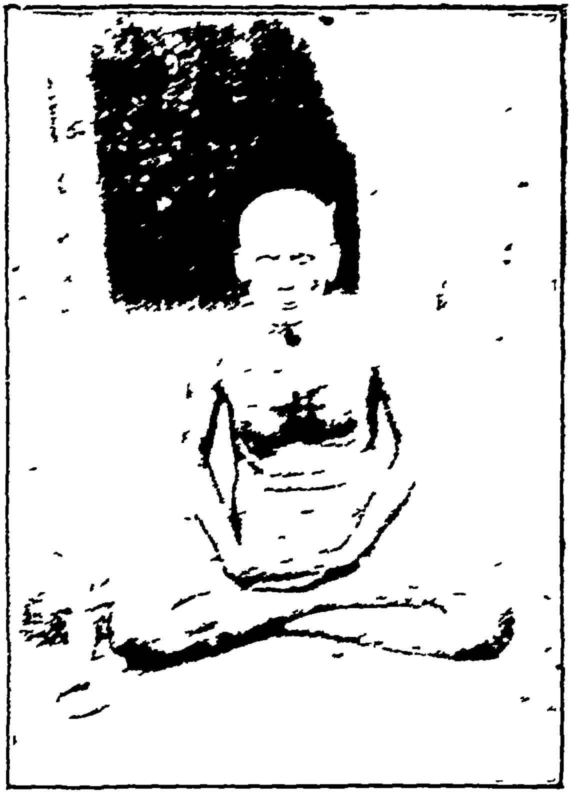
प्रकाशक—जोंहरी रूपलाल मोतीलाल मींडा

उदयपुर (मेवाड़)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१	राग	राग
३	१८	वाङ्मय	वाङ्मय
४	१७	श्री	श्री
५	१	जग	जगत्
५	६	कथा	कथा
५	१४	और	०
७	१४	गरिम	गरिमा
०	८	समान	सम्मान
१२	४	रहना	रहना
१२	१५	पु	पु
२३	१३	कथा	कथा
२७	७	सत्य वचन	वचन सत्य
३०	४	सब	सब
३२	१०	नग	नग
४०	७	मैं	मैं
४५	१२	चित्र	चित्र
४०	५	नहीं है	है
५२	८	ला	ला
५२	१७	तु	तु
५८	११	र	रे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	६	रसको	रस
६५	८	ने	न
६९	१२	ण	णे
७०	७	कनक	कनका
७०	११	शां	शा
७२	८	शोल	शील
७३	६	ससार	ससारमे
७४	६	तिचयः	निचयः
७७	२	न	ने
७८	८	क्रापि	पि
७८	८	वांध	वोधदा
८०	१७	माक्ष	मोक्ष
८७	२	मद	मद्
८७	३	ज	ज
९०	१०	त	तं
९२	१६	वृ	कृ
९५	१३	र्ग	र्गा
९७	८	तह	यह
९७	९	प्रामियें	प्राप्तिमें
१००	५	प्लि	सी
१०२	१३	त्रिर	च्चिर
१०४	१८	पड़ी	बड़ी



परमपूज्य आचार्य श्री १०८

शांतिसागर महाराज.

* श्री *

भक्तामर-शतद्वयी

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणां
तत्त्वप्रकाशकसमस्तगणेशगानाम् ।
षट्खण्डभूमिधरचक्रधरेशलक्ष्म्या
उद्भासकं वृषभपादयुगं नमामि ॥ १ ॥

अर्थ—भगवान वृषभदेवके जो दोनों चरण कमल भक्ति करने वाले देवोंके नमस्कार करते समय उनके मुकुटों में लगे हुए मणियों की कांतिको बढाने वाले हैं, जो तत्त्वों के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले समस्त गणधरोंकी सरस्वती को वा उनके श्रुतज्ञानको बढाने वाले हैं और जो छहों खंड पृथ्वीको धारण करने वाले चक्रवर्तियों की लक्ष्मी को बढाने वाले हैं ऐसे श्री वृषभदेवके उन दोनों चरण कमलोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

उद्योतकं दलितपापतमोवितानं
कर्माष्टनाशनविधायिनि कर्मभूमौ ।
मार्गस्य मोक्षगमने चिर लुप्तकस्य
श्रीद परं वृषभपादयुगं नमामि ॥ २ ॥

अर्थ—भगवान वृषभदेवके जो दोनो चरण कमल कर्मभूमि मे आठों कर्मो को नाश करने वाले और चिरकाल से लुप्त हुए मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करने वाले है तथा जो पाप रूपी अन्धकारके समूहको नाश करने वाले हैं, अन्तरङ्ग वहिरंग लक्ष्मीको देने वाले है और जो सर्वोत्कृष्ट है ऐसे श्री वृषभदेवके दोनों चरण कमलों को मैं नमस्कार करता हू ॥ २ ॥

आराधित गणधरादिमुनिप्रवाहैः
श्रीगोमटेशभरतादिकराजलोकैः ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा
वाराधयामि सतत वृषभं जिनेन्द्रम् ॥ ३ ॥

अर्थ—मैं सबसे पहले भगवान अरहन्त देव के चरण कमलों को अच्छी तरह नमस्कार करता हू ।
तदनन्तर परपरा से चले आए समस्त गणधरादिक मुनियोंने जिनकी आराधना की है तथा युगके प्रारम्भ मे

१ कर्माष्टकप्रतिविधायककर्मभूमौ

चतुर्थ कालके प्रारम्भ में महाराज भरत और महाराज गोम टेश वा बाहुबलि आदि राजा लोगों ने जिनकी आराधना की है ऐसे श्री जिनराज भगवान वृषभदेव की मैं सदा आराधना करता हूं ॥ ३ ॥

क्षारात्मके ऽखिलचतुर्गतिनक्रचक्रे
संतापदावभरितेऽखिलरागगर्ते ।
आलंवनं भवजले पततां जनानां
ध्यायामि तं प्रथमतीर्थंकरं युगादौ ॥ ४ ॥

अर्थ-संसार रूपी समुद्रका जो जल खारा है (दुख दायक है) समस्त चारों गतियाही जिसमें मगर मच्छो का समूह है अनेक प्रकारके मानसिक व्याधिया ही जिस मे दावानल अग्नि भरी हुई है तथा अनेक प्रकारके शारीरिक रोग ही जिसमें भवर है, ऐसे जन्ममरण रूप संसार जलमें पडे हुए लोगो का जो चतुर्थ कालके प्रारभमें सहारा देने वाले है, संसारी जीवो को सन्मार्गसे उद्धार करने वाले हैं ऐसे उन प्रथम तीर्थंकर भगवान वृषभदेव का मै सदा ध्यान करता हूं ॥ ४ ॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्वबोधात्
यः पूजितोऽखिलसुरेन्द्रनरेन्द्रसंव्यात् ।
ध्यातश्च यः सकलसूरिमुनीन्द्रशिष्यात्

स्तोत्रै र्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारै
रिन्द्रादिभिः श्रुतधरैरहमिन्द्रदेवैः
श्चक्र्यादिभिः हरिहरादिसमस्तदेवै-
र्यः संस्तुतो गणधरैश्च समन्तभद्रैः ॥७॥

अज्ञोऽसुधी सकलशास्त्रविचारहीनः
भक्त्यानया भवति बालकलीलया वा ।
मात्रापदादिरहितैरतितुच्छशब्दैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥८॥

अर्थ—जिन भगवान वृषभदेवकी स्तुति पूर्ण श्रुतज्ञान को धारण करने वाले इन्द्रादिक देवोंने, अहमिन्द्रदेवोंने चक्रवर्तियोंने, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि समस्त देवोंने, गणधरदेवोंने और स्वामी समंतभद्रने तीनों लोकोंके हृदयको हरण करने वाले उदार स्तोत्रोंसे की है उन्हीं भगवान वृषभदेवकी स्तुति अत्यंत मूर्ख, बुद्धि रहित, और और समस्त शास्त्रों के विचार से रहित ऐसा मैंभी केवल आपकी इस परम भक्तिसे अथवा बालक के समान होने वाली लीलासे मात्रा पद आदि से रहित ऐसे अत्यंत तुच्छ शब्दोंके द्वारा अवश्य करूंगा ॥ ७ ।—॥ ८ ॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ !
प्रारभ्यते तव नुतिर्जिननाथ ! भक्त्या ।
निर्मीयते क्षण चल भवन प्रतोल्या
बालैर्विवेकरहितैः सलिलैर्मृदा वा ॥ ९ ॥

नामानि ते कथयितुं खलु नैव शक्ता
प्रज्ञानिनो गणधराश्च नुते कथा का ।
त्वां शक्रपूज्यदिनय ननु बुद्धिहीन
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ॥ १० ॥

भी करता हूं ऐसे हे प्रभो! आपकी स्तुति करनेके लिये बुद्धिहीन मैं भी निर्लज्ज होकर तैयार हुआ हूं ॥ १० ॥

जानाति नैव तव पूर्णगुणाननन्तान्
सोऽयं जनस्तव नुतिं विदधाति लोके।
अन्यो यथा स्पृशति कः खलु चन्द्रवेत्ता
बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिंबम्॥ ११ ॥

अर्थ—हे देव! जो पुरुष आपके पूर्ण अनन्त गुणोंका नहीं जानता वही पुरुष इस संसारमें आपकी स्तुति की रचना करता है। जैसे—बालकको छोड़कर जिसको चन्द्रमा का अच्छा ज्ञान है ऐसा अन्य कौन मनुष्य है जो जलमें पड़े हुए चन्द्रमाके प्रतिबिम्बको स्पर्श करे? अर्थात् कोई नहीं ॥ ११ ॥

चन्द्रं जिनं परममार्गनिदेशकं च
लोके वचोमृतझरं ननु पूर्णराशिम्।
व्योम्नि स्थितं जगति मां प्रविहाय बाल-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् १२

अर्थ—हे देव! हे जिनराज! आप पूर्ण चन्द्रमाके

समान है। आप मोक्षमार्ग को दिखाने वाले हैं, उत्तम प्रवचनरूपी अमृतकी वर्षा करनेवाले हैं, ज्ञानरूपी पूर्ण किरणों का धारण करने वाले हैं और आकाश प्रदेश स्थित हैं। ऐसे पूर्ण चन्द्रमाके समान आपका वर्णन मात्र करने के लिये उस समवशरण बालक को छोड़कर अन्य कौन मनुष्य इच्छा करता है। अर्थात् कोई नहीं ॥ १२ ॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशांककान्तान्
शक्तः शशांकेन च कान्यजनस्य वार्ता
भक्त्या तथापि मम देवनुतौ प्रवृत्ति-
र्भक्तिर्जनान् तव विभो विकली करोति १३

अर्थ—हे गुणोंके समुद्र ! हे प्रभो ! चन्द्रमाके समान निर्मल ऐसे आपके गुणोंका वर्णन करनेके लिये स्वर्गके समस्त कायाका पूर्ण करनेमें समर्थ ऐसा शशभा (चन्द्र भी) समर्थ नहीं फिर भला अन्य पुरुष की तो बात ही क्या है। तथापि हे भगवन ! हे देव ! आपकी स्तुति करनेमें जो मेरी प्रवृत्ति हुई है सो केवल भक्तिसे ही हुई है। हे प्रभो ! आपकी भक्तिभी लोगों का व्याकुल बना देती है ॥ १३ ॥

ज्ञानादयो विभुगुणाः परमा ह्यनन्ताः
प्रत्येकदेशनिरताः निखिलांशयुक्ताः ।

सर्वान् विभो ! कथयितुं ननु मर्त्यलोके
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुध्या ॥ १४ ॥

अर्थ—हे भगवन् आपके केवल ज्ञानादिक व्यापक सबको जानने वाले) गुण परमोत्कृष्ट हैं अनंत हैं, आत्मा के प्रत्येक देशमें व्याप्त हैं और अपने पूर्ण परिच्छेदोंसे सुशोभित हैं। हे नाथ! हे प्रभो! इस मनुष्य लोकमें चाहे कोई अपनी बुद्धिसे इन्द्रके गुरु बृहस्पतिके समान क्यों न हो, तथापि वह आपके उन समस्तगुणों को कहने के लिये कभी समर्थ नहीं हो सकता ॥ १४ ॥

भक्त्या तथापि शिवदायक मादृशोऽज्ञः
स्तोतुं य इच्छति जनः भवनाशहेतोः।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं
सोयं तरीतुमभिवांच्छति वान्तसिंधुम् १५

अर्थ—तथापि मोक्ष प्राप्त कराने वाले हे भगवन् ! जो कोई मेरे समान मूर्ख मनुष्य अपने जन्ममरण रूप संसार को नाश करने के लिये केवल भक्तिसे ही आपकी स्तुति करने की इच्छा करता है वह कल्प कालके अंत समयकी

बाहुसे जिसमें मगर मच्छोंके समूह ऊपर आरहे हैं ऐसे अतके स्वयंभूरमण समुद्रको तैरना चाहता है ॥ १५ ॥

सूक्ष्मान् स्वभावनिरतान् रसरूपहीनान्
नित्यान् त्रिलोकमहितान् ननु शब्दबाह्यान्
शक्रादयो तव गुणान् नहि वक्तुमीशाः
कोवा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्यां ॥१६॥

अर्थ-हे भगवन् आपके गुण अत्यंत सूक्ष्म हैं आत्माके शुद्धस्वभावमें लीन है, रूप रस आदिसे रहित अमूर्त हैं, नित्य हैं, तीनों लोकोंके द्वारा पूज्य हैं, और वचनोंके अगोचर है, हे नाथ! ऐसे आपके गुणोंको इन्द्रादिक सामर्थ्यशाली देवभी कहनेको समर्थ नहीं है। सो ठीकही है क्योंकि समुद्रको केवल भुजाओं से भला कौन पार कर सकता है अर्थात् कोई नहीं ॥ १६ ॥

सोहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश?
शुश्रूषया सुखद! बालकलीलया वा।
बुद्ध्या नितान्तरहितोपि गुणेषु हर्षाद्

देवाधिदेव! तव भूरि यशः प्रवक्ष्ये॥ १७॥

अर्थ—हे भगवन सुखदेने वाले देवाधिदेव! हे मुनिराज! मैं इस प्रकार वुद्धि रहित हूं, तथापि केवल आपकी भक्तिके वशसे अथवा आपके चरणों में होने वाली प्रवल श्रद्धासे अथवा केवल वालकके समान होने वाली लीला से अथवा आपके गुणोंको देखकर होनेवाले हर्षसे अत्यत वुद्धि रहित होता हुआ भी मैं आपका वहुतसा यश वर्णन करना चाहता हूं॥ १७॥

शक्रः स्तवं तव विभो! नितरां करोति
भेकोपि नाथ! कुरुतेऽत्र यदा कदाचित्।
बिज्ञः सदा प्रकुरुतेऽद्य तथा जनोऽयं
कर्तु स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः॥ १८॥

अर्थ—हे प्रभो! हे नाथ! आपकी स्तुति इन्द्र तो सदा करता ही है परन्तु कभी किसी समय मैंडक भी आपकी स्तुति कर लेता है। इसी प्रकार विद्वान पुरुष तो आपकी स्तुति सदा करते ही हैं, परन्तु यह शक्ति रहित मनुष्य भी आज आपकी स्तुति करने के लिये तैयार हुआ है॥ १८॥

जानन् निजं नव विभो सुगुणाननन्तान्
स्तोत्रे सुबुद्धिरहितोऽपि गुणानुरागात् ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
प्राप्नोति युद्धि गतितोऽपि सुतानुरागात् १९

नानाकुयोनिषु जिनेन्द्र चिरं भ्रमित्वा
पादारविन्दशरणं तव चागतोऽहं ।
धेनुर्यथा विपिनभूमि पुनर्भ्रमित्वा
तास्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् २०

अर्थ—हे भगवन् ! मैं अनेक कुयोनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ आपके चरण कमलों की शरणमें प्राप्त हुआ हूं। जैसे गाय जगलमें चारोंओर घूमकर, अपने बच्चेको पालन करनेके लिये क्या अपने घर नहीं आती है ? अवश्य आती है। इसी प्रकार मैं भी आपकी शरणमें आया हूं। २०

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
छन्दः कलागमकलक्षणशास्त्रहीनम् ।
श्री शान्तिसागरपदाम्बुजसेवमानं
शास्त्रानुकूलचरणं जिनभक्तियुक्तम् ॥२१॥

स्वात्मप्रबोधजननी निजबोधरुपा
स्वर्गापवर्गसुखदानपरायणा या।
सम्यक्त्ववृत्तभगिनी सुगुणानुरक्ता
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् २२

अर्थ—हे भगवन यद्यपि मैं श्री शांतिसागर आचार्य के चरण कमलों की सेवा करने वाला हूं, शास्त्रानु कूल

मोक्षके फलदेनेवाले हैं, और इन्द्रोंके द्वारा पूज्य हैं। हे देवाधिदेव! ऐसे आपके चरण कमलो के निकट रहते हुए ही मैं आपकी स्तुति करता हूं। जैसे कोयल जो मधुर शब्द करती है सो वसंत ऋतुके रहते हुए ही करती है। अन्यथा नहीं॥ २३॥

यद्देव! शक्ति रहितोऽपि नुतिं करोमि
तत्कारणं सुखद! ते चरणप्रसादः।
यत्कोकिलः परमपावन गायतीष्टं
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु॥ २४॥

अर्थ—हे देव! मैं शक्ति रहित होता हुआ भी जो आपकी स्तुति करता हूं, उसका कारण केवल आपके चरणो का प्रसाद ही समझना चाहिये। हे परमपवित्र! हे सुख देने वाले भगवन्! कोकिल जो मधुर गायन गाती है उसका कारण केवल सुन्दर आमकी कलियो का समूहही समझना चाहिये॥ २४॥

त्वत्संस्तवेन भयसन्तति सन्निबद्धं

भव्यो जहाति दुरितं निजभावबद्धम्।
वस्त्रं यथा प्रचुरतैलघृतादिबद्धम्।
क्षारं मलं चिरगतं वरपाक्ययोगात् २५

अर्थ—हे भगवन्! भव्यपुरुष आपकी स्तुति करने मात्रसे अनेक जन्मोंमें बंधे हुए, और अपने ही परिणामोंसे बांधे हुए पापकर्मोंको बहुत शीघ्र छोडदेता है। नष्ट कर देता है। जैसे एक बहुतसे तेल घीसे चिकटे हुए (लगे हुए) वस्त्रसे मैलको उत्तम सोडाके संयोगसे बहुत शीघ्र छोड देता है। नाश करदेता है। भावार्थ—जैसे सोडासे सब मैल अपने आप धुलजाता है, इसीप्रकार आपकी स्तुति करने मात्रसे अपने आप सब पाप नष्ट हो जाते हैं॥ २५॥

त्वन्नाममन्त्रजपतोऽशुभभावबद्धम्
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
नाशं प्रयातु मम देव किमत्र चित्रम्
-स्तुत्यानयाल्पतमया हि शिवान्तरायः २६

अर्थ—हे प्रभो ! आपका नाम रूपी मन्त्रके जप करने मात्रसे प्राणियोंके अशुभभावोंसे बन्धे हुए पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं। फिर भला मैंने जो यह आपकी बहुत छोटी स्तुति की है, उससे मोक्ष लक्ष्मीको रोकने वाला मेरा अन्तराय कर्म यदि नाश हो जाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। भावार्थ—आपकी इस स्तुति करनेमें मेरा अन्तराय कर्म अवश्य नष्ट होगा, और मुझे मोक्षकी प्राप्ति अवश्य होगी ॥२६॥

जन्माभिषेकसमये गिरिराजकूटात्
त्वत्पादपद्मपतिता वरवारिधारा।
आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु
मिथ्यातमो जगति सुश्रुत! धावतेऽस्मिन् ॥२७॥

अर्थ—हे भगवन् ! हे सुश्रुत ! आपके जन्म होनेके समय इन्द्रने जो अभिषेक किया था, उस समय मेरु पर्वतसे आपके चरण कमलोंका प्रक्षालन करती हुई जो उत्तम पवित्र जलकी धारा गिर रही थी, उसने इस संसारमें तीनों लोकों को आक्रात करनेवाली और भ्रमरके समान अत्यन्त काली, वा पाप रूप ऐसी मिथ्यात्वरूपी कालिमा धोडाली है। भावार्थ—यह मिथ्यात्व रूपी कालिमा आपके अभिषेकके जलसे ही दूर होती है ॥२७॥

धर्मोपदेशसमये तव दिव्यभाषा
वर्णात्मिका शिवमयाऽखिलवर्णहीना ।
नष्टं तया हि सकलं दुरितं त्रिलोके
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥२८॥

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद
मारभ्यते सुखधिया शिवलिप्सया वा ।
ध्यानस्यतीव्रतपसो मम नास्ति शक्ति-
स्तस्माज्जिनेन्द्र ! तव संस्तवनं करोमि ॥२९॥

अर्थ—हे नाथ ! यही समझ कर मैंने अनन्त सुख प्राप्त करनेकी इच्छासे अथवा मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा से यह आपकी स्तुति करना प्रारम्भ किया है । हे जिनराज ! न तो

ध्यान करनेकी मेरी शक्ति है, और न घोर तपश्चरण करनेकी मेरी शक्ति है। इसीलिये हे प्रभो! मैं आपकी यह स्तुति करता हूं ॥२९॥

ध्यानं नितान्तकठिनं कठिनं तपश्च
मोक्षस्य साधनतमा कठिना स्तुतिश्च ।
मोक्षस्य तीव्रतमलालसया मयेय-
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ॥३०॥

अर्थ—हे भगवन्! इस संसारमें उत्तम ध्यान (धर्मध्यान वा शुक्लध्यान) धारण करना नितांत कठिन है, और मोक्ष की प्राप्ति अवश्य करादेनेवाली ऐसी आपकी स्तुति भी अत्यन्त कठिन है। तथा मेरी बुद्धि अत्यन्त छोटी है। तथापि मोक्ष प्राप्त करनेकी लालसा अत्यन्त तीव्र लग रही है। इसीलिये केवल आपके प्रभाव से ही मैंने इस स्तुति का करना प्रारम्भ किया है ॥३०॥

चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ।
स्पृष्टं जिनेन्द्रचरणाङ्घ्रिविष्टरं वा
पूज्यं पुरं नगवरं विपिनं यथा वा ॥३१॥

तुच्छातितुच्छमपि काव्यकलाविहीनं
दोषैरुपेतमपि देवगुणानुरक्तम् ।
देवाधिदेव! तव संस्तवनं मयेदं
भक्त्या कृतं हृदयहारि ततो प्रकृष्टम् ॥३२॥

अर्थ—हे भगवन्! जिस प्रकार कमलिनीके पत्र पर पड़ी हुई जलकी बूंद मोतीके समान शोभाको धारण करती है और सज्जनोंके हृदयको हरण करती है अथवा जिस प्रकार भगवान जिनेन्द्रदेवके चरणोंसे स्पर्श किया हुआ सिंहासन पूज्य गिना जाता है। भगवान जिनेन्द्रदेवके चरणोंसे स्पर्श किया हुआ नगर, पर्वत, वा मेरुपर्वत और वन पूज्य गिना जाता है उसी प्रकार हे देवाधिदेव! यद्यपि यह आपका स्तोत्र अत्यन्त तुच्छ वा तुच्छसे भी अत्यन्त तुच्छ है काव्यकी समस्त कलाओंसे रहित है और दोषोंसे भरपूर है। अत्यन्त भक्तिसे बनाया हुआ है और आपके गुणोंसे सना हुआ है। हे प्रभो! इसमें आपके गुणोंका वर्णन है। इसीलिये यह सज्जनोंके हृदयको हरण करनेवाला है। और अत्यन्त उत्कृष्ट है ॥३१-३२॥

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
नामापि नाथ! तव विघ्नहरं नितान्तम्।
सोमांजनाञ्जनकजामुनिमानतुङ्गाः
नाम्नैव ते तटगता भवदुःखसिंधोः ॥३३॥

अर्थ—हे भगवन्! समस्त दोषोंको दूर करनेवाला आपका स्तवन करना तो दूर रहा, केवल आपका नाम लेने मात्रसे ही समस्त विघ्न सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। हे प्रभो! सती सोमा, सती अंजना, सती सीता, और मुनिराज मानतुंग आदि केवल आपका नाम लेनेसे ही संसारके दुःख रूपी समुद्रसे पार होगये। भावार्थ—उनके समस्त दुःख दूर होगये ॥३३॥

नाम्ना तरन्ति पुरुषा नहि चित्रमत्र
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
तस्मात्पठन्ति रचयन्ति विमर्शयन्ति
ये त्वत्कथां जगति ते जिननाथ! धन्याः ॥३४॥

अर्थ—हे जिननाथ! आपका नाम लेनेसे पुरुष इस संसारसे पार हो जाते हैं, इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं है। क्योंकि आपकी कथा, वा आपका जीवन चरित्र कहने मात्रसे ही वा सुननेसे ही संसारके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये हे प्रभो! जो लोग आपकी कथाको पढते हैं, आपकी कथाकी रचना करते हैं, और उसका मनन वा चिन्तवन करते हैं वे पुरुष इस संसार मे धन्य हैं ॥३४॥

आस्तां कथा त्वदुपदिष्टमिदं हि शास्त्रं
नित्यं प्रकाशयति नाथ! निजात्मरूपम्।

नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !
मोहादिकर्मनिवहं क्षयमाप्नुयान्मे ।
रत्नत्रयं शिवकरं प्रकटीभवेद्वा
स्तुत्यानयैव शिवनाथ ! शिवं भवेद्वा ॥३७॥

अर्थ—हे ससारमात्रके एक भूषण ! हे समस्त जीवोके स्वामी ! हे मोक्ष लक्ष्मी के स्वामी ! मैने जो आपकी यह स्तुति की है। उसीसे मेरे मोहनीय आदि समस्त कर्मोंके समूह नष्ट हो जायेंगे, अथवा मेरे आत्मामें मोक्ष प्राप्त करानेवाला रत्नत्रय प्रकट हो जायगा अथवा मोक्षकी ही प्राप्ति हो जायगी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥३७॥

भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः
शक्रादयो परभवे कृतिनो भवन्ति ।
शक्त्या स्तुतिं तव जिनेन्द्र ! करोमि भक्त्या
भूयात्सदा भवति नाथ ! शिवान्तभक्तिः ॥३८॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! हे स्वामिन् ! इस संसारमें इन्द्रादिक देव आपके अनेक गुणोका वर्णन कर आपकी स्तुति करते हैं। इसलिये वे परभवमे अर्थात् मनुष्य-भव धारण कर कृतकृत्य

हो जाते हैं। सिद्ध हो जाते हैं। हे भगवन्! मैने भी यह आपकी स्तुति अपनी शक्तिके अनुसार भक्ति पूर्वक की है। इसलिए हे प्रभो। जब तक मुझे मोक्ष प्राप्त न हो, तब तक सदा आपमें ही मेरी भक्ति बनी रहे। यही मेरी प्रार्थना है ॥३८॥

गायन्ति ये तव गुणान् मधुरस्वरेण
गुम्फंति काव्यनिवहे निजविद्यया वा।
स्तुत्या स्तुवन्ति गुणभूषण! युक्तया वा
विश्रावयन्ति कथयन्ति भवत्कथां ये ॥३९॥
ध्यायन्ति वा ननु नमन्ति जपन्ति त्वां ते
स्वामिन! भवैः कतिपयैः तव भूरिभूत्या।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥४०॥

अर्थ—हे स्वामिन्! जो पुरुष अपने मधुर स्वरसे आपके गुणोंका गान करते हैं। जो पुरुष अपनी विद्याके बलसे आपके गुणोंको अनेक काव्योंमें गुफन करते हैं। जो पुरुष आपके गुणोंका अनेक प्रासादादिक गुणोंसे, वा उपमा आदि अलङ्कारोंसे सुशोभित होनेवाली स्तुतिसे स्तवन करते हैं। जो पुरुष आपकी कथाको कहते हैं। वा भक्ति पूर्वक सुनाते हैं, जो पुरुष आपका

अभिषेक करते हैं, आपको नमस्कार करते हैं, वा आप का जप करते हैं, वे पुरुष थोड़े ही भवोमे आपके समान बड़ी भारी विभूतिको धारण कर आपके ही समान होजाते हैं। सो ठीक ही है। क्योंकि संसारमें ऐसे पुरुष से क्या लाभ है, जो बड़ी भारी विभूति देकर, आश्रित पुरुषोंको वा सेवकको अपने समान न करले। भावार्थ— सज्जन पुरुष अपने आश्रित पुरुषको अपने समान कर ही लेते हैं ॥३९-४०॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
भव्याः स्मरन्ति चिरविस्मृत मोक्षमार्गम्।
रत्नत्रयं शिवमयं प्रगुणां लभन्ते
तेनैव ते सपदि नाथ ! भवन्ति सिद्धाः ॥४१॥

अर्थ—हे नाथ! आपका स्वरूप टिमिकार बन्द किये बिना (टकटकी लगाकर) देखने योग्य है। ऐसे आपके स्वरूपको देखकर, भव्य पुरुषोंको चिरकालसे भूले हुए मोक्षमार्गका स्मरण होजाता है। अथवा वे भव्य पुरुष आपके स्वरूपको देख कर, कल्याण करनेवाले और सर्वोत्कृष्ट रत्नत्रय गुणको प्राप्त कर लेते हैं। तथा उसी रत्नत्रय गुणके प्राप्त होनेसे वे बहुत शीघ्र सिद्ध पदको प्राप्त हो जाते हैं।४१॥

शान्तं मनोहरतमं वरवीतरागं
लक्षैः सहस्रकिरणैः समतां दधानम् ।
जातस्वरूपमवलोक्य तव स्वरूपं
नान्यत्र नोपसुपयाति जनस्य चक्षुः ॥४२॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपका स्वरूप अत्यन्त शान्त है, अत्यन्त मनोहर है, सबसे अधिक वीतराग है, करोड़ो सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला है। और उत्पन्न होनेके समयके समान, सर्वथा वस्त्र रहित दिगम्बर है। हे प्रभो ! ऐसे आपके स्वरूपको देखकर लोगोके नेत्र हरि हरादिक अन्य देवोंमे कभी सन्तुष्ट नहीं होते ॥४२॥

स्याद्वादलांछितमनारतमर्शनीयं
सानात्मकं निखिलजीवदयाप्रधानम् ।
तत्वोपदेशनिपुणं विगतेष्टबाधं
सत्यात्मकं शिवकरं शिवदर्शकं च ॥४३॥
एवं त्वदीयवचनं जिनराज ! वुध्वा
वेदाद्यसत्यवचनं नहि रोचते मे ।

पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः
क्षारंजलं जलनिधेः रसितुं क इच्छेत् ॥४४॥

हे भगवन्! आपके वचन अनेकान्तमे सुशोभित हैं, सदा विचार करने योग्य हैं, सब तरहके प्रमाणोंमे सुशोभित हैं समस्त जीवोंपर दया करनेमे प्रधान हैं, जीवादिक तत्वोंके उपदेश देनेमें अत्यन्त निपुण हैं, प्रत्यक्ष वा परोक्ष प्रमाणसे कभी इनमें बाधा नहीं आती, वे सत्य वचन स्वरूप है, सब जीवोंका कल्याण करनेवाले हैं, और मोक्षके स्वरूपको दिखलानेवाले हैं। हे जिनराज! ऐसे आपके वचनोंको समझ कर फिर यह मनुष्य वेद आदि असत्य वचनोंको कभी स्वीकार नहीं करता। सो ठीक ही है। क्योंकि चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत कान्तिको धारण करनेवाले क्षीरसागरके जलको पीकर ऐसा कौन मनुष्य है जो फिर लवणसमुद्रके खारे पानीको पीनेकी इच्छा करता हो? अर्थात् कोई नहीं ॥४३-४४॥

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
श्रेष्ठैः सुनिर्मलतमैरतिसुन्दरैर्वा।
पुण्यात्मकैः सकललोकहितप्रवाहैः
स्वर्णोपमैर्विधुमयैः करुणामयैर्वा ॥४५॥

तेनैव जन्मसमयेऽपि तवाभिषेकः
क्षीराम्बुनाऽखिलसुरैर्विधृतः सुमेरौ ॥४७॥
बोधत्रयं च सहजातिशयान् प्रपन्नो
लोकोत्तरोसि भगवन्! भुवि सर्ववर्यः।
ध्येयोसि वा खलु निरन्तरमीक्षणीयः
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥४८॥

अर्थ—हे भगवन्! जिन उत्तम परमाणुओंसे आपका सुन्दर शरीर बना है, वे परमाणु संसारमें उतने ही हैं। इसलिये इस संसारमें आपके जन्मसे पहले ही इन्द्रादिकदेव अतुल रत्नोंकी वर्षा करते हैं तथा वे ही इन्द्रादिक समस्त देव आपका जन्म होते ही आपको मेरु पर्वत पर लेजाते हैं, और वहांपर क्षीरसागरके जलसे आपका अभिषेक करते हैं। हे भगवन्! आपके जन्मके साथ ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तीनों ज्ञान उत्पन्न हुए हैं, जन्मके साथ होनेवाले दश अतिशय प्राप्त हुए हैं, आप इस संसारमें लोकोत्तर हैं, सबसे श्रेष्ठ हैं, ध्यान करने योग्य है, और सदा दर्शन करने योग्य हैं। हे भगवन्! आपके शरीरकी रचना करनेवाले परमाणु उतने ही हैं, इसीलिये इस संसारमे आपके समान अन्य किसीका रूप नहीं है॥४७-४८॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
यद्दृश्यते खलु चतुर्दिशि ते प्रभावात् ।
कान्त्या निरस्तदिवाकरकोटिकान्ति
शान्तं तथापि नितरामवलोकनीयम् ॥४९॥

निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानं
सादृश्यमुग्धविदुषां खलु सोपमानम् ।
अत्यन्तसुन्दरतमं कमलोपमानं
वैराग्यभावजनकं नितरां तथापि ॥५०॥

अर्थ—हे प्रभो ! आपके उस मुखने तीनों लोकोंकी समस्त उपमाएं जीत ली हैं । इसलिये आपका मुख उपमा रहित है । तथापि मेरे समान हुए विद्वानोंके लिये उपमा सहित है

हे नाथ! आपका यह मुख कमलके समान अत्यन्त सुन्दर है। तथापि वह सदा वैराग्य भावोंको उत्पन्न करता रहता है ॥५०॥

बिम्ब कलंकमलिनं क निशाकरस्य
यत्क्षीयते प्रतिदिन परिवर्द्धते वा।
लज्जावशाच्च दिवसे नहि दृश्यते यद्
रात्रौ च पंचदश वासरमेव लोके ॥५१॥

अर्थ—हे स्वामिन्! कलङ्ककी कालिमाको धारण करनेवाला चन्द्रमाका बिम्ब कहां? जो प्रतिदिन या तो घटता रहता है, या बढता रहता है। तथा जो लज्जाके कारण दिनमे दिखाई नहीं देता, और रात्रिमे भी केवल पन्द्रह दिन ही दिखाई देता है ॥५१॥

यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्प
म्लानं प्रभाविरहितं ननु रश्मिहीनम्।
चन्द्रोपमं तव मुखं कथयन्ति येऽतः
ते काव्यबोधरहिताः अथ भक्तियुक्ताः ॥५२॥

अर्थ—हे प्रभो! यह चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब दिनमें ढाकके पत्तेके समान सफेद होजाता है। प्रभा रहित मलिन होजाता है। और किरणोंसे सर्वथा रहित हो जाता है। इसलिये कहना चाहिये कि जो लोग आपके मुखको चन्द्रमाकी उपमा देकर वर्णन करते हैं। वे या तो आपके यथार्थ ज्ञानसे रहित हैं, अथवा आपकी गाढ़ भक्तीको धारण करते हैं ॥५२॥

इन्दोः कलंकमलिनस्य कलाकलापः
न्यायात्सदैव मलिनोस्ति ततो मुनीन्द्राः।
सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप
शुभ्रा गुणा स्तव विभो! कथयन्ति भक्त्या ॥५३॥

अर्थ—हे प्रभो! चन्द्रमा कलङ्कसे मलिन है। इसलिये न्याय पूर्वक यह बात सिद्ध हो जाती है, कि इसकी कलाओंका समूह भी मलिन ही होता है। तथापि अनेक मुनिराज जो यह वर्णन करते हैं, कि आप गुण पूर्ण प्रतिबिम्बको धारण करनेवाले चन्द्रमाकी किरणोंके समूहके समान श्वेत हैं। यह वर्णन केवल भक्तिसे करते हैं ॥५३॥

सम्यक्त्ववीर्यसुखदर्शनसूक्ष्मताद्याः
ज्ञानावगाहनगुणाः परमा विशुद्धाः।
शुद्धात्मजाः स्थिरतराः सहजा ह्यनन्ताः
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति ॥५४॥

अर्थ—हे प्रभो ! सम्यग्दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, अनन्त दर्शन सूक्ष्मत्व, अनन्त ज्ञान, अवगाहनत्व आदि आपमें रहनेवाले गुण सब अत्यन्त उत्कृष्ट है, परम विशुद्ध हैं, शुद्ध आत्मामे उत्पन्न हुए हैं, अत्यन्त स्थिर हैं, अत्यन्त निर्मल हैं आपकी मुक्तिके साथ साथ उत्पन्न हुए हैं। और अनन्त हैं। हे नाथ ! ऐसे वे आपके गुण तीनो लोकोका उल्लंघन करते हैं ॥५४॥

ज्ञानादयो तव गुणाः शिवसम्पदां वै
यच्छन्ति भक्तपुरुषाय गुणान्विताय ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं
शक्ताश्च दातु मनिशं भुवनेश्वरत्वम् ॥५५॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके ज्ञानादिक गुण सम्यग्दर्शनादिक गुणोंको धारण करनेवाले भक्त पुरुषोके लिये मोक्ष लक्ष्मी भी देदेते हैं। सो ठीक ही है। क्योकि जो तीनो लोकोके एक ईश्वरके आश्रय जाकर रहे हैं, वे सदा तीनों लोकोका ईश्वरपना भी देनेके लिये समर्थ रहते हैं। और दे सकते हैं ॥५५॥

भव्या स्त्वदीयसुगुणाननु धारयन्ति
ते नाथ ! लोकशिखरं सहसा व्रजन्ति ।

ये धारयन्ति नरनाथनिदेशचिन्हं
कस्तान् निवारयति संचरतोयथेष्टम् ॥५६॥

अर्थ—हे नाथ ! जो भव्य जीव आपके उत्तम गुणोंको धारण करते हैं, वे बहुत शीघ्र लोकशिखर पर जा विराजमान होते हैं। सो ठीक ही है। क्योंकि जो पुरुष राजाके आज्ञाचिन्हको (पोशाक, आज्ञापत्र, वा पट्टा आदि राजाके द्वारा दिये हुए चिन्हको) धारण करते हैं। उनको इस संसारमें इच्छानुसार घूमते हुए कौन रोक सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥५६॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभी-
रूपं विकाररहितं सततं प्रदृष्टम् ।
शांतं विकाररहितं खलु ते शरीरं
भव्यान् करोति सहसा हि विकारहीनम् ॥५७॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपका रूप विकार रहित है। यदि ऐसे आपके रूपको स्वर्गों की देवाङ्गनाए सदा देखतीं रहें, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि शान्त और विकार रहित आपका शरीर भव्य जीवोंको बहुत शीघ्र विकार रहित कर देता है, और अवश्य कर देता है ॥५७॥

लोकोत्तरं जगति सातिशयं महान्तं
ते प्रातिहार्यमवलोक्य सुरेशपूज्य ! ।
शुद्धात्मशक्तिलवबोधधरैश्च भव्यै-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ॥५८॥

अर्थ—हे इन्द्रोंके द्वारा पूज्य! भगवन्! आपके प्रातिहार्य लोकोत्तर हैं, अत्यन्त उत्कृष्ट हैं, और चौतीस अतिशयोंसे सुशोभित हैं। इस संसारमें ऐसे आपके प्रातिहार्योंको देख कर, जिन लोगोंको शुद्ध आत्माकी अनन्त शक्तिका थोड़ासा भी ज्ञान है। ऐसे भव्य जीवोंके हृदयमें किञ्चित भी विकार उत्पन्न नहीं होता है। भावार्थ—आपके प्रातिहार्योंको देख कर उन्हीके हृदयमें विकार उत्पन्न हो सकता है, जिनको आत्माकी अनन्त शक्तिका ज्ञान नहीं है ॥५८॥

आतापनप्रभृतियोगधरा मुनीन्द्राः
भक्ता जिनेन्द्र ! तव घोरतपोदधानाः ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
अन्येन वा नहि चलन्ति परीषहेन ॥५९॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र! आतापनयोग, वर्षायोग आदि योगोंको धारण करनेवाले, तथा घोर तपश्चरणको धारण

करनेवाले आपके भक्त मुनिराज कल्पकालके अन्तमें बहनेवाली और पर्वतों तक को हिलादेनेवाली वायुसे अथवा ऐसी ही ऐसी अन्य परीषहों से कभी चलायमान नहीं होते हैं ॥५९॥

किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचि-
दित्थं जिनेन्द्र ! कथनं भुवि रूढिमात्रम् ।
जन्माभिषेकसमये पयसा सुरैश्च
देवांगनाभिरपि चंचलितं तदेव ॥६०॥

अर्थ—"मेरु पर्वतका शिखर क्या कभी चलायमान हो सकता है" संसारमे यह जो कथन चला आता है, वह केवल रूढ़िसे चला आता है। हे जिनराज ! जिस समय आपका जन्माभिषेक हुआ था उस समय वही मेरु पर्वतका शिखर क्षीरसागरके जलसे, देवोंके समूहसे और देवाङ्गनाओंके समुदायसे कम्पायमान होने लगा था ॥६०॥

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
मोहांधकारनिधनैकपटुः प्रदीपः ।
तेनैव दूरमुपयाति मनोन्धकारं
मिथ्यात्वभावजनितं चिरकाललग्नम् ॥६१॥

अर्थ—हे नाथ! आप इस संसारमें एक अपूर्व दीपक हैं, दीपकमें धूम होता है, बत्ती होती है, और तेल होता है, परन्तु आप धूम बत्ती तेल आदि सब साधनोंसे रहित हैं। दीपक अन्धकारको दूर करता है। आप मोह रूपी अन्धकारको नाश करनेमें अत्यन्त चतुर हैं। हे भगवन्! उसी दीपक रूप आपसे यह मिथ्यात्व भावोंसे उत्पन्न हुआ और चिरकालसे लगा हुआ मनका अन्धकार बहुत शीघ्र दूर होजाता है ॥६१॥

चित्ते प्रकाशयति धर्ममधर्मरूपं
कालं नभो निखिलजीवभरं च मूर्तम्।
किं वा त्रिकालभवपर्ययसार्धमेव
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी करोषि ॥६२॥

अर्थ—हे प्रभो! अपूर्व दीपक रूप आप भव्य जीवोंके हृदयमें धर्म द्रव्यका, अधर्म द्रव्यका स्वरूप प्रकाशित करते हैं, आकाश, कालका स्वरूप प्रकाशित करते हैं, समस्त जीवोंके समूहका स्वरूप प्रकाशित करते हैं, और पुद्गल तत्वका स्वरूप प्रकाशित करते हैं। अथवा यों कहना चाहिये कि तीनों कालोंमें होनेवाली समस्त पर्यायोंके साथ साथ आप इस समस्त तीनों लोकोंको प्रकाशित करते हैं ॥६२॥

गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
शान्तो न वातरहिते बहुछादिते वा।

सूर्यप्रकाशवहुले ज्वलितो नितान्त
वर्षासु सागरजले नहि वर्द्धतेऽसौ ॥६३॥

अर्थ—हे प्रभो! अपूर्व दीपक रूप आप पर्वतोको चलायमान करदेनेवाली वायुसे भी कभी नहीं बुझते है, दीपक थोड़ीसी वायुसे ही बुझ जाता है। तथा दीपक वायु रहित प्रदेशमें अथवा ढक देनेपर बुझ जाता है, परन्तु आप न वायु रहित प्रदेशम बुझते हैं, न आछादन हानेपर बुझ सकते हैं। दीपक सूर्यके प्रकाशमें अच्छी तरह प्रकाशमान नही होता, परन्तु आप करोड़ो सूर्यके प्रकाशमें भी अत्यन्त प्रकाशमान होते रहते हो। *दीपक वर्षामें वा जलमें बढ जाता है* (बुझ जाता है, परन्तु आप वर्षामें वा महासागरके जलमें भी कभी नही बढते हो (बुझते हो) ॥६३॥

स्थित्वा त्रिलोकशिखरेऽपि विकाशतेयं
स्पष्टं त्रिलोकसहितं युगपद्व्यलोकम्।
तेनैव देव! भुवि चित्रकरः प्रशान्तः
दीपोपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥६४॥

अर्थ—हे नाथ! आप तीनो लोकोके शिखर पर विराजमान होकर भी तीनो लोको सहित अलोकाकाशको एक साथ और प्रत्यक्ष प्रकाशित करते हैं। हे देव! इसीलिये आप

इस संसारमें आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले, अत्यन्त शान्त, और जगतको प्रकाशित करनेवाले, सर्वोत्तम दीपक कहे जाते हैं ॥६४॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
लोके न तापयासि कानपि जीवलोकान् ।
भक्तान् करोपि निजभूतिसमान् जिनेन्द्र !
सूर्यः प्रभो ! त्रिभुवने त्वमदृष्टपूर्वः ॥६५॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र ! हे प्रभो ! आप तीनों लोकोंमें एक अपूर्व सूर्य हैं। और ऐसे अपूर्व सूर्य हैं, कि जो किसीने कभी न देखे हों। क्योंकि सूर्य अस्त होता है। आप कभी अस्त नहीं होते। सूर्यको राहु ग्रस लेता है। आपको वह कभी नहीं ग्रस सकता। सूर्य सबको संतप्त करता है, परन्तु आप इस संसारमें किसी भी जीवको संतप्त नहीं करते। हे प्रभो! सूर्य अपने समान किसीको नहीं कर सकता, परन्तु आप अपने भक्त पुरुषोंको विभूतिमें भी अपने समान कर देते हैं। इसीलिये हे नाथ! आप इस संसारमें अपूर्व सूर्य हैं ॥६५॥

सूर्यः प्रकाशयति नाथ ! सदाल्पदेशे
स्थूलार्थमेव दिवसे न तु सर्वकाले ।

तीव्रातितीव्रतररश्मिचयो हि सूर्यः
त्वं नान्तशान्तरसमग्नतमो रवीशः ।
सूर्यःसदा भ्रमति नाथ ! सुनिश्चलस्त्वं
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥६८॥

अर्थ—सूर्यकी किरणोका समूह तीव्रसे भी अत्यन्त तीव्र है, परन्तु आप अनन्त शान्त रसमें नितान्त मग्न हैं। सूर्य सदा फिरता रहता है, परन्तु आप सदा निश्चल बने रहते हैं। आप इस ससारमें सूर्यके भी स्वामी हैं। इसलिये हे मुनीन्द्र! आपकी महीमा सूर्यसे भी बहुत बढ़कर है ॥६८॥

नित्योदयं दलितपापतमोवितानं
दिव्यैः वचोमृतभरैः परितर्पयन्तम् ।
दुष्कर्मतप्तहृदयान् परिशान्तयन्तं
चन्द्रोपमं तव मुखं नितरां स्मरामि ॥६९॥

अर्थ—हे नाथ! आपका मुख चन्द्रमाके समान है। अन्तर केवल इतना ही है, कि चन्द्रमाका उदय सदा नहीं होता, आपका उदय सदा बना रहता है। चन्द्रमा केवल अन्धकारका नाश करता है, आपका मुख पाप रूपी अन्धकारके समूहका

नाश कर देता है। चन्द्रमा अमृतसे सबको तृप्त करता है, आपका मुख दिव्यवचन रूपी, (दिव्यध्वनि रूपी) अमृतके झरनेसे सबको तृप्त करता रहता है। चन्द्रमा उष्णतासे तप्त पुरुषोंको शान्त करता है आपका मुख पापकर्मसे सतप्त होनेवाले हृदयोंको अथवा पापकर्मसे जिनके हृदय सतप्त हैं, ऐसे पुरुषोंको सदा शान्त करता रहता है। हे नाथ! ऐसे आपके चन्द्रमाके समान मुखको मैं सदा स्मरण करता हू ॥६९॥

गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानां
जन्मान्तकाद्यखिलदोषकलंकहीनम्।
हानादिदोषरहितं परिवेषयुक्तं
मूर्ध्ना नमामि तव वक्त्रमपूर्वचन्द्रम् ॥७०॥

अर्थ—चन्द्रमाको राहु दबा लेता है, बादल छिपा लेता है, और वह कलङ्कसे कलङ्कित है। परन्तु आपके मुख रूपी अपूर्व चन्द्रमाको न राहु दबाता है न बादल छिपाता है, और न वह जन्म मरण आदि समस्त दोष रूपी कलङ्कसे कलङ्कित है। चन्द्रमा घटता बढ़ता है, आपका मुख कभी घटता बढ़ता नही। तथापि आपका मुख परिमण्डलसे वा भामण्डलसे सुशोभित है। हे प्रभो! ऐसे आपके मुख रूपी अपूर्व चन्द्रमाको मैं मस्तक झुका कर नमस्कार करता हू ॥७०॥

त्वद्ज्ञानगन्धमनुभूय सुरद्विरेफाः
स्वर्गात्समेत्य परितो ननु त्वां भजन्ति[1]।
सिद्धान्तकेशरसुगान्धितसर्वलोकं[2]
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति ॥७१॥

अर्थ—हे भगवन्! जिसके ज्ञान रूपी सुगन्धका अनुभव कर देव रूपी भ्रमर स्वर्गसे आकर चारों ओरसे आपकी सेवा करते हैं। हे नाथ! जिसने अपने वचन रूपी केशरसे समस्त लोकको सुगन्धित कर दिया है, और जिसकी कान्ति ही प्रबल है, ऐसा आपका मुख रूपी कमल इस संसारमें बहुत ही शोभायमान हो रहा है ॥७१॥

शैलेशगह्वरविराजिततापसानां
मिथ्यानुरागमभिभूय विकाशते यत्।
स्वात्मप्रबोधमपि दिव्यवचोमृतैर्वा
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकविम्बम् ॥७२॥

अर्थ—हे भगवन्! जो मुनि पर्वतोंकी गुफाओंमें विराजमान हैं, उनके भी मिथ्यात्व वा रागद्वेषको दूर कर जो देदीप्यमान होता है, तथा जो दिव्यवचन रूपी अमृतसे अपने

१ भजन्ते। २ ब्राह्मीसुकेशरसुगंधितसर्वलोकं

तेनैव नाथ! सुखदं भवदुःखहीनं
प्राप्नोमि कर्मरहितं जिननाथ! मोक्षम् ॥७४॥

अर्थ—हे नाथ! आपके मुख रूपी चन्द्रमासे समस्त अन्धकार दूर होगया। इसलिये मैं अपने आत्माके स्वरूपको सिद्धोंके समान देखने लगा हूं। हे नाथ! हे जिननाथ! यही कारण है कि अब मुझे अनत सुख देनेवाली, संसारके समस्त दुःखोंसे रहित, और समस्त कर्मोंसे रहित ऐसी मोक्ष शीघ्र ही प्राप्त होगी ॥७४॥

यस्मिन् प्रभो! जनपदे प्रविराजितस्त्वं
मिथ्यात्वरोगग्रसितो न कदापि तत्र।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
क्षुद्रोगपीडिततमो न कदापि वित्तः ॥७५॥

अर्थ—हे प्रभो! जिस देशमें जाकर आप विराजमान होते हैं, उस देशमें मिथ्यात्व रोगसे पीड़ित मनुष्य कभी नही रह सकता। भला जिस देशमे पके हुए धानके अनेक खेत शोभायमान है, उस देशमें चतुर मनुष्य भूखसे अत्यंत पीड़ित कभी नहीं रह सकता ॥७५॥

भव्यः करोति विपुलां तव नाथ ! भक्तिं
यस्तं भवाब्धितरणे तपसा न कार्यम् ।
कृत्स्नान्नदे परिणतान्नसुकच्छदेशे
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥७६॥

अर्थ—हे नाथ ! जो भव्य पुरुष आपकी गाढ़ भक्ति करता है उसको संसाररूपी महासागरसे पार होनेके लिये तपश्चरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। सब प्रकारके अन्न उत्पन्न करने वाले और जिसमें सब तरहके अन्न खेतोंमें पके खड़े हैं ऐसे उत्तम कच्छ देशमें (जिसमें पानीकी अधिकता हो ऐसे देशमें) जलके भारसे नवे हुए बादलोंसे क्या प्रयोजन है। भावार्थ—अन्न पकने पर नये बादल व्यर्थ हैं इसी प्रकार आपकी गाढ़ भक्तिके आगे तपश्चरण भी व्यर्थ है ॥७६॥

मोहादिदोषरहिते परमे विरक्ते
दिव्यैर्वचोभिरभिदर्शितमोक्षमार्गे ।
सिंहासनादिसहिते सुरनाथपूज्ये
ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशम् ॥७७॥

मोहादिदोषसहितेषु रमायुतेषु
चक्रादिशस्त्रमहितेषु विचेष्टितेषु ।

आप्तान्तरेषु च परस्परसेवकेषु
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ॥७८॥

अर्थ—हे भगवन्! आप मोहादि समस्त दोषोसे रहित हैं, परम वीतराग हैं, अपनी दिव्यध्वनिके द्वारा मोक्षमार्गका दिखलाने वाले हैं, सिंहासन आदि प्रातिहार्योंसे सुशोभित हैं, और इन्द्रोंके द्वारा पूज्य हैं। ऐसे आपमे जैसा सर्वोत्तम अनन्त ज्ञान शोभायमान है। वैसा ज्ञान जिनमें मोहादि समस्त दोष भरे हुए हैं, जो स्त्रियोको साथ लिये हुए हैं, चक्र त्रिशूल आदि अनेक शस्त्रोंसे सुशोभित हैं। जिनकी अनेक लीलाएं विकृत हैं और जो परस्पर एक दूसरेकी सेवा करते हैं, ऐसे अन्य विष्णु महादेव आदि ईश्वर माने जाने वाले अन्य आप्तो में कभी नहीं हो सकता ॥७७–७८॥

तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्व-
माप्तत्वमेव भवति प्रतिभाति नित्यम् ।
शास्ता प्रदोषरहितः खलु सर्वदर्शी
पूज्यः शतेन्द्रपुरुषैश्च यतस्त्वमेव ॥७९॥

अर्थ—हे भगवन्! देदीप्यमान मणियोंमें तेज जैसा शोभाको प्राप्त होता है, उसी प्रकार आपमें ही आप्तपना सदा

शोभाको प्राप्त होता है। हे प्रभो ! इसीलिए आप हितोपदेशी हैं, रागद्वेष आदि समस्त दोषोंसे रहित हैं, सर्वज्ञ हैं, और आप ही सौ इन्द्रोंके द्वारा पूज्य हैं ॥७९॥

बुद्धो हरिर्नरपतिर्नरलोकपूज्य !
आप्तत्वमेति न तथापि कदापि तेषु ।
चिन्तामणौ जगति याति यथा महत्त्व
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥८०॥

अर्थ—हे नरलोक पूज्य ! समस्त जन समुदायके द्वारा पूज्य ! चाहे बुद्ध हो, चाहे विष्णु हो, और चाहे ब्रह्मा हो, उनमेंसे किसीमें भी आप्तपना कभी नहीं आसकता। सो ठीक ही है, इस संसारमें चिन्तामणी रत्नमें जैसा प्रकाश होता है, वैसा प्रकाश अनेक किरणोंसे सुशोभित ऐसे कांचके टुकड़ेमें कभी नहीं आ सकता ॥८०॥

एकस्त्वयाहि कथितो भुवि मोक्षमार्गः
कृष्णादिभिर्ननु चतुर्गतिमार्गवृन्दः ।
त्वत्तो विशेष विदुरा अपि आप्तवाह्याः
मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टाः ॥८१॥

हे भगवन्! इस संसार में आपने केवल एक मोक्षमार्ग का स्वरूप बतलाया है। तथा कृष्णादिक अन्य देवोंने चारो गतियों के अनेक मार्ग दिखलाये हैं। इसलिये कहना चाहिये, कि विष्णु महादेव आदि जो कि आपसे सर्वथा दूर हैं, वे भी किसी भी प्रकारसे आपसे अधिक विद्वान् नहीं हैं। इसलिए मैं तो उन्हींको देखना अच्छा समझता हूँ ॥८१॥

काले कलौ जिनभवा जिनदेव! ग्रन्थाः
श्रद्धानवृत्तजनका भुवि माननीयाः।
श्राद्धैस्ततो मुनिभिरेव विलोकनीयाः
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ॥८२॥

अर्थ—हे जिनदेव! इस कलिकालमें भगवान जिनेन्द्र-देवके कहे हुए ग्रन्थ सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्रको उत्पन्न करनेवाले हैं, और संसार भरमें मान्य हैं। अतएव श्रावकोंको तथा मुनियोंको सदा उनका अध्ययन करना चाहिये। हे भगवन्! उन ग्रन्थोंको देखनेसे ही हम लोगोंका हृदय आपमें सन्तुष्ट होता है ॥८२॥

कृष्णास्य वृत्तपठनेन सुदर्शनेन
राधादिवन्निखिलदारगणेषु हाहा।

किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
चित्तं न चोरयति वै विभवः प्रसूतः ॥८३॥

स्यादस्ति नास्ति विभवः खलु सतत्त्वः
द्रव्यस्वभावजनितो नयमानमाप्य ।
अस्ति त्वदीयवचनं न ततोऽन्यथान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि ॥८४॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
सर्वे भ्रमन्ति नरकादिकदुःखसिंधो ।
प्राप्तस्त्वया सकलकर्मवधात्प्रमोक्ष—
स्तेनैव नाथ ! जननी तु तवैव धन्या ॥८५॥

अर्थ—सैकड़ो स्त्रियां हजारों पुत्र उत्पन्न करतीं हैं, परन्तु वे सब पुत्र नरकादिकके दुःख रूपी महासागरमें गोते खाते फिरते है। परन्तु हे नाथ ! आपने समस्त कर्मोंका नाश कर मोक्ष प्राप्त किया है। इसीलिये हे प्रभो ! इस संसारमें एक आपकी ही माता धन्य है ॥८५॥

त्वं नाथ ! जातसमये पयसाभिषिक्तः
मेरौ नगे सकलदेवजनैश्च वंद्यः ।
एवं प्रपूज्यपुरुषं विमलं महान्तं
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ॥८६॥

अर्थ—हे नाथ ! आप जिस समय उत्पन्न हुए थे, उसी समय इन्द्रादिक समस्त देवोंने मेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीर-सागरके जलसे आपका अभिषेक किया था, तथा उसी समय सबने मिलकर आपकी वंदना की थी। हे भगवन् ! आप ऐसे

महा पूज्य पुरुष हैं मलमूत्रादिक से रहित अत्यन्त निर्मल हैं, और महापुरुष हैं। ऐसे आपके समान पुरुषको आपकी ही माता उत्पन्न कर सकती है। अन्य कोई माता आपके समान पुरुषोको उत्पन्न नहीं कर सकती ॥८६॥

उत्पादयन्ति तनयान् बहुशो जनन्यः
त्वां देवदेवमनघं जननी तवैव।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मिम्
सूते सदोर्ध्वधरणिर्निषिधाचलस्य ॥८७॥

अर्थ—हे नाथ! अनेक माताएं अनेक पुत्रोंको उत्पन्न करती हैं, परन्तु समस्त पापोंसे रहित और समस्त देवोके देव ऐसे आपको आपकी ही माता उत्पन्न कर सकती है। नक्षत्रोंको वा तारोको सब दिशाए उत्पन्न करती है, परन्तु सहस्र किरणों को धारण करनेवाले सूर्यको सदा निषिधाचल पर्वतकी ऊपरकी भूमि ही उत्पन्न कर सकती है ॥८७॥

श्रीमोक्षमार्गनिरतं वृषचक्रसेव्यं
त्वामीदृशं चमरछत्रविराजमानम्।
शक्या प्रभो! जनयितु च तवैव माता
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥८८॥

अर्थ—हे प्रभो ! आप अन्तरङ्ग बहिरङ्ग विभुतिसे सुशोभित मोक्ष मार्गमें लीन हैं धर्म चक्र आपकी सदा सेवा करता है, और चमर छत्रसे आप शोभायमान हैं। हे नाथ! ऐसे आपको उत्पन्न करनेके लिये आपकी ही माता समर्थ हैं। क्योंकि जिसकी किरणें अत्यन्त देदीप्यमान हैं, ऐसे सूर्यको पूर्व दिशा ही उत्पन्न कर सकती है, अन्य नहीं ॥८८॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस
मादीश्वर परमपूज्यमनन्तशक्तिम् ।
लोकातिगं सकललोकहित दयालुं
शांतं प्रशांतरजस निरुपाधिरूपम् ॥८९॥
कर्मेन्धनस्य दहने दहनस्वरूपं
क्रोधादिधूलिशमने वरमेघवर्षम् ।
संसारसिंधुतरणे पटुकर्णधार-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ॥९०॥

अर्थ—हे नाथ ! गणधरादिक मुनिराज आपको 'परम पुरुष कहते हैं, आदीश्वर कहते हैं, परम पूज्य बतलाते हैं, अनन्त शक्तिसे सुशोभित कहते हैं, लोकोत्तर बतलाते हैं, समस्त जीवोंके हितकारी और दयालु कहते हैं, अत्यन्त शांत

बतलाते हैं, ज्ञानावरणादिक समस्त कर्मोंको नाश करनेवाले कहते हैं, और राग द्वेष आदि सब तरहकी उपाधियोंसे रहित बतलाते हैं। हे नाथ ! कर्म रूपी ईंधनको जलानेके लिये आपको अग्निके समान बतलाते हैं। क्रोध मान माया लोभ रूपी धूलिको दबानेके लिये आपको उत्तम मेघोंकी वर्षा कहते हैं। संसार रूपी समुद्रसे पार कर देनेके लिये आपको चतुर खेवटिया बतलाते हैं, तथा अंधकारके सामने आपको निर्मल सूर्यके समान बतालते हैं ॥८६-६०॥

त्वामाप्य भव्यपुरुषाश्च जयन्ति रागं
द्वेषं क्षुधां भयगदं मदशोकहर्षम् ।
मोहं स्मयं मनसिजं जिननाथ ! निद्रां
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युम् ॥६१॥

अर्थ—हे जिननाथ ! भव्य पुरुष आपको पाकर राग द्वेष, क्षुधा, भय रोग, मद, शोक हर्ष, मोह, आश्चर्य काम और निद्रा आदि सबको जीत लेते हैं। हे प्रभो ! और की तो क्या ? आपको ही अच्छी तरह पाकर मृत्यु तकको जीत लेते हैं ॥६१॥

नाथत्वमेव भुवि चक्रिसुखप्रदाता
देवेन्द्रचन्द्रधरणींद्रपदप्रदाता ।

त्वं मोक्षदः सकलदोषहरो विना त्वां
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पंथाः॥६२॥

अर्थ—हे नाथ ! इस संसारमें आपही चक्रवर्ती के सुख देनेवाले हैं, आपही इन्द्र, चन्द्र और धरणीन्द्र के पद देनेवाले हैं, आप ही मोक्ष देनेवाले हैं। और आप ही समस्त दोषों का हरण करने वाले हैं। हे नाथ ! हे मुनीन्द्र ! आपके बिना कल्याण करनेवाला मोक्षका मार्ग अन्य कोई नहीं है ॥६२॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
सार्वं युगादिपुरुष सुमुखं पवित्रम् ।
वागीश्वरं परमतत्त्वममेयभावं
श्रेष्ठं गरिष्ठमनघं मुनयो वदन्ति ॥६३॥
पुण्यं पुराणपुरुषं विभयं विविक्तं
भाषापतिं शिवपतिं तपनीयकान्तिम् ।
गण्यं महामहपतिं वदतां वरिष्ठं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम् ॥६४॥

अर्थ—हे भगवन् ! गणधरादिक मुनि आपको अव्यय-(कभी न नाश होने वाले) विभु-(ज्ञानके द्वारा व्यापक) अचिंत्य-

(चिंतवन करनेमे न आवे) असख्य-(असख्यात गुणोको धारण करनेवाले) आद्य-(इस युगके प्रारम्भमें होनेवाले) सार्व-(सबका भला करनेवाले) युगादिपुरुष-(इसयुगके सबसे प्रथम महापुरुष) सुमुख-(पवित्र मुखको धारण करनेवाले) पवित्र-(अत्यत पवित्र) वागीश्वर-(वाणीके ईश्वर) परमतत्त्व-(परम आत्मतत्त्वको धारण करनेवाले) अमेयभाव-(अनन्त गुणोको धारण करनेवाले) श्रेष्ठ-(सबसे उत्तम) गरिष्ठ-(सबसे भारी जो जाननेमे न आ सके) और अनघ-(पाप रहित) कहते हैं। तथा हे प्रभो! आपको पुण्य-(पुण्य सपादन करनेवाले) पुराणपुरुष-(सबसे प्राचीन पुरुष) विभय-(भयरहित) विविक्त-(सबसे रहित) भाषापति-(समस्त भाषाओके स्वामी) शिवपति-(मोक्षके स्वामी) तपनीय कांति-(सुवर्णके समान कांतिको धारण करनेवाले) गण्य-(गिनते वा मनन करने योग्य) महामहपति-(अत्यन्त तेजको धारण करनेवाले) वदता वरिष्ठ (कहने वालोमें सर्वोत्तम) ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त और कामकी ध्वजाको धारण करनेवाले, कहते हैं ॥६३-६४॥

योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
सौम्यं वृष वृषपतिं प्रभवं कृतार्थम्।
लोकोत्तर परिवृढं वरदं वरेण्यं
श्रेयोनिधिं परतरं यतयो वदन्ति ॥६५॥

अर्थ—हे नाथ, मुनिराज आपको योगीश्वर-(योगियोंके स्वामी), विदित योग-(ध्यानके स्वरूपको जाननेवाले), अनेक एक, [illegible] ज्ञान-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥४॥

कान्तं जिनान्तविरतं सुगतं भदन्तं
धीशं चराचरगुरुं जितमोहमल्लम् ।
शान्तं कलंकरहितं हतदुर्नयं त्वां
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥६६॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धिबोधात्
सर्वार्थसिद्धिरनिशं सकलार्थदानात् ।
शास्ताऽसि देव ! भुवनत्रयशासकत्वात्
लोके सुभद्रकरणाद्धि समन्तभद्रः ॥९७॥

अर्थ—हे इन्द्रादिक देवोंके द्वारा पूज्य ! संसारमें आपही बुद्ध हैं क्योंकि बुद्धिजन्य या आत्मजन्य ज्ञान केवल आपमें ही है। तथा हे प्रभो ! आपही समस्त पदार्थोंको सिद्ध करा देनेवाले सर्वार्थसिद्धि स्वरूप हैं। क्योंकि भव्य जीवोंको आप उन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले हैं। हे भगवन् ! आपही शास्ता या हितोपदेशी हैं क्योंकि आप तीनों लोकोंके शासक हैं। और हे देव ! इस संसारमें आपही समन्तभद्र हैं। क्योंकि आप निश्चयसे समस्त जीवोंका कल्याण करनेवाला रूप कहलाते हैं ॥९७॥

मृत्युंजयोऽसि जननान्तकनाशकत्वात्
ईशोऽसि नाथ ! भुवनेशशतेन्द्रपूज्यात् ।
कामारिरेव भुवि मन्मथघातकत्वात्
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात् ॥९८॥

धाताऽसि धीर! शिवमार्गविधेर्विधानात्
ब्रह्माऽसि देव! परमात्मनि संस्थितत्वात् ।
त्वं स्वात्मभूरपि निजात्मगुणप्ररोहात्
लोके त्वमेव जिनदेव! चतुर्मुखोऽसि ॥२६॥

अर्थ—हे धीर! हे देव! हे जिनदेव! इस लोकमें मोक्ष मार्गकी विधिका विधान करनेवाले आपही हैं, इसलिये आपही धाता हैं। आप परमात्म पदमें स्थापित किये हैं, इसलिये आपही ब्रह्मा कहे जाते हैं। आप अपने आत्मीय गुणोंसे प्रगट हुए हैं, इसलिए आपही स्वयंभू कहलाते हैं। और हे प्रभो! इस संसारमें केवल आपही चतुर्मुख हैं ॥२६॥

जिष्णुर्यतो भुवनदुर्जयकामजेता
विष्णुर्यतो निखिललोकपदार्थवेत्ता ।

कर्माष्टकृन्तनपरः खलु चक्रपाणिः
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥१००॥

अर्थ—हे भगवन्! इस संसारमे कामदेव अत्यन्त कठिनतासे जीता जाता है उसको भी आपने जीत लिया है, इसलिये आपही जिष्णु कहलाते हैं। इस समस्त संसारमें भरे हुए पदार्थोंको जाननेवाले आपही हैं इसलिये आपही विष्णु वा ज्ञानके द्वारा व्यापक कहे जाते हैं। आप आठों कर्मोंको नाश करनेमे अत्यन्त चतुर हैं इसलिये आपही चक्रपाणि कहलाते हैं। अतएव हे भगवन्! इस संसारमें आपही स्पष्ट पुरुषोत्तम कहे जाते हैं ॥१००॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ।
तुभ्यं नमः सकललोकसुखप्रदाय।
तुभ्यं नमः सकलकर्मविनाशकाय
तुभ्यं नमो निजगुणाष्टकदायकाय ॥१०१॥

अर्थ—हे नाथ! आप तीनो लोकोंके दुःखोंको दूर करनेवाले हैं, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूं। आप समस्त जीवोंको सुख देनेवाले हैं, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूं। आप समस्त कर्मोंको नाश करनेवाले हैं, इसलिये

हे भगवन् ! आप तीनो लोकोके एक परमेश्वर हैं, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हू। आप समस्त जीवोका हित करनेवाले है, इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हू। आप समस्त शास्त्रोंके वा द्वादशाङ्ग वाणीके महोपदेशक हैं, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हू। तथा आप समस्त भव्य जीवोको शान्तरसको देनेवाले हैं, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हू ॥१०३॥

तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय
तुभ्यं नमो विमलभव्यविकाशकाय ।
तुभ्यं नमः परमशान्तपदप्रदाय
तुभ्यं नमो विमलकेवललोचनाय ॥१०४॥

हे जिन ! आप इस ससार रूपी समुद्रको सुखा देनेवाले हैं, इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूं। आप मिथ्यात्वरूपी दोषोंसे रहित भव्य जीवोको प्रफुल्लित करनेवाले है, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हू। आप परम शान्त पद वा मोक्षपदको देनेवाले हैं, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हू। तथा आप निर्मल केवल ज्ञानरूपी नेत्रको धारण करनेवाले हैं, इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हू ॥१०४॥

घातिक्षयात्सुखमनन्तमनन्तवीर्यं
ज्ञानं च दर्शनमनन्तमनन्तदृष्टिः ।

श्रीधर्मचक्रमसुरैश्च सुरैश्च सेव्यं
सत्प्रातिहार्यमपि सातिशयं प्रयन्तम् ॥१०५॥
अन्यश्च व्यक्तरहितैः खलु सूक्ष्मताद्यैः
जातैरनन्तसुगुणैश्च निजात्मशुद्धेः ।
को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ! ॥१०६॥

अर्थ—हे भगवन्! घातिया कर्मोंके क्षय होनेसे आपके अनन्त सुख प्रकट होगया है, अनन्त वीर्य प्रगट होगया है, अनन्त ज्ञान प्रगट होगया है, अनन्त दर्शन प्रगट होगया है, और अनन्त सम्यक्त्व प्रगट होगया है। इसके सिवाय सुर असुर सब जिसकी सेवा करते हैं, ऐसा धर्म चक्र प्रकट होगया है, आठ प्रातिहार्य प्रगट होगये हैं, और चौंतीस अतिशय प्रगट होगये हैं। हे प्रभो! आपकी आत्मा अत्यन्त शुद्ध है, इसलिये उस शुद्ध आत्मामें और भी सूक्ष्मत्व आदि अनन्त अव्यक्त गुण प्रगट होगये हैं। अतएव हे नाथ! हे मुनिराज! आपके प्रत्येक आत्म प्रदेशमें समस्त गुण सुशोभित हैं, ऐसा कहनेमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥१०५-१०६॥

शक्तश्चतुर्मुखधरोहि तिलोत्तमायां
शंभुर्गिरीशतनयासु सदा प्रलग्नः ।

गोपांगनासकलवस्त्रहरोहि कृष्णाः
एवं सुरा व्यसनमोदमदप्रयुक्ताः ॥१०७॥
रामारमाव्यसनभूषणशस्त्रयुक्ताः
चिन्ताक्षुधाद्यखिलदोषयुतास्ततो वै ।
दोषैरुपात्त विबुधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥१०८॥

अर्थ—ब्रह्मा तिलोत्तमामें लीन है, महादेव गिरजामे सदा ही लीन रहते हैं, और कृष्ण गोपियोंके समस्त वस्त्र हरण करते रहते है। इस प्रकार ब्रह्मादिक देव सब व्यसनोंके आनन्द और अभिमानमें लीन हैं। स्त्री, लक्ष्मी, व्यसन, आभूषण और शस्त्रोंसे सुशोभित हैं। तथा चिन्ता, क्षुधा आदि समस्त दोषोंसे परिपूर्ण हैं। इसलिये ब्रह्मादिक देवो का आश्रय प्राप्त हो जाने के कारण जिनको अभिमान हो रहा है ऐसे दोषोने आपको स्वप्नमें भी कभी नही देखा। ॥१०७॥ ॥१०८॥

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख
संतप्तकांचननिभं स्थिरमेरुतुल्यम् ।
देवैर्नृपैर्गणधरैश्च सुरांगनाभिः
संसेवितं सकललोकजनैश्च वंद्यम् ॥१०९॥

सिंहासनेन वसुमङ्गलवस्तुना च
भामण्डलेन चमरैश्च विराजमानम् ।
सौम्यं निशाकरसमं रविकान्तिपुंज-
माभातिरूपममलं भवतो नितान्तम् ॥११०॥

अर्थ—हे प्रभो ! आपका रूप ऊँचे अशोक वृक्ष से शोभायमान है, उसमेंसे अनेक किरणें निकल रही है, वह तपाये हुऐ सोने के समान है, अथवा अत्यत स्थिर रहनेवाले मेरु पर्वतके समान है, देव चक्रवर्ती गणधर और देवांगनाएं सब उसकी सेवा करते हैं, तीनों लोकोंके जीव उसकी वंदना करते हैं। सिंहासन, आठ मङ्गल द्रव्य, भामण्डल, और चमरोंसे वह अत्यन्त शोभायमान है, चन्द्रमाके समान वह सौम्य है, और सूर्यकी कान्तिके समूहके समान वह दैदीप्यमान है। हे भगवन्! ऐसा यह आपका निर्मल रूप अत्यन्त शोभायमान हो रहा है ॥१०६-११०॥

दीप्त्या प्रभाकरसमं प्रशमं नितान्तं
नेत्रप्रियं हृदयहारि ततो विचित्रम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमो वितानं
रूपं विभाति भवतो तरुशोभमानम् ॥१११॥

अर्थ—हे नाथ ! आपके रूपकी कान्ति सूर्यके समान है, तथापि वह अत्यन्त शान्त है सौम्य है नेत्रोंको सुन्दर जान पड़ता है, और हृदयको हरण करनेवाला है। इसीलिये वह अत्यन्त विचित्र है। हे प्रभो ! अशोक वृक्षके नीचे सुशोभित होनेवाला आपका शरीर समस्त अन्धकारको नाश कर रहा है और उससे अनेक देदीप्यमान किरणें स्पष्ट रीतिसे निकलती हुई दिखाई दे रही हैं। हे नाथ ! ऐसा आपका यह शरीर बहुत ही अच्छा शोभायमान हो रहा है ॥१११॥

बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति
किं वा सुपाडुंकवने खलु मेरुशोभम् ।
सौम्यं च कांचननगं वनशोभमानं
देहं विभाति परमं तरुसंश्रितं ते ॥११२॥

अर्थ—हे भगवन् ! अशोक वृक्षके नीचे विराजमान आपका शरीर ऐसा शोभायमान हो रहा है मानो काले बादलोंकी घटाके समीप सूर्यका बिम्ब ही हो अथवा पांडुक वनमें मेरुपर्वत दिखाई दे रहा हो। अथवा चारों ओर वनोंसे शोभायमान अत्यन्त सुन्दर कांचन पर्वत हो। हे प्रभो ! ऐसा यह आपका शरीर अत्यन्त शोभायमान हो रहा है ॥११२॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
चापैः सुरस्य परितश्च विभासमाने ।

रम्ये सुवर्णखचिते ननु मेरुतुल्ये
विभ्राजितं जिनवरं शिरसा नमामि ॥११३॥

अर्थ—हे भगवन्! आपका सिंहासन अनेक प्रकारकी मणियोंकी किरणोंकी शिखामे अनेक वर्णका सुशोभित होरहा है, और ऐसा शोभायमान हो रहा है, मानो उसके चारो ओर इन्द्र धनुष सुशोभित हो रहा हो। इसके सिवाय सुवर्णका बना हुआ वह सिंहासन, अत्यन्त ही मनोहर है, और मेरु पर्वतके समान सुशोभित हो रहा है। ऐसे अत्यन्त मनोहर सिंहासन पर आप विराजमान हैं। इसलिये हे जिनवर! मै आपको मस्तक झुक कर नमस्कार करता हूं ॥११३॥

मेरोश्च नन्दनवने ननु मेरुश्रृंगं
पूते सुपांडुकवने कनकाचलं वा।
हेमाद्रिभासितरविं च मृगेन्द्रपीठे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्। ॥११४॥

अर्थ—हे भगवन्! सुवर्णमय ऊँचे सिंहासन पर विराजमान आपका सुवर्णमय शरीर ऐसा शोभायमान होरहा है, मानो नन्दन वनमें मेरु पर्वतका शिखर ही हो, अथवा पवित्र पाडुक मेरु पर्वतके वनमें कनकाचल पर्वत हो, अथवा हिमवान पर्वत पर सूर्य ही शोभायमान हो रहा है ॥११४॥

येन प्रभाभिरभिदर्शितमोक्षमार्ग-
मुद्भासितं निखिलभव्यसहस्रपत्रम् ।
दिव्यध्वनिद्युतिसमूहबलेन पुंसां
दूरीकृतं सकलमोहतमोवितानम् ॥११५॥
सिंहसनादुपरि नाथ ! विराजमानं
दृष्ट्वा मनन्ति मुनयस्तव शान्तकायम् ।
विम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥११६॥

अर्थ—जिन भगवान अरहन्तदेवने अपनी प्रभासे ही मोक्षमार्गको चारो ओर प्रकाशिक कर दिया है, तथा समस्त भव्य रूपी कमलोंको जिन्होने प्रफुल्लित कर दिया है। और दिव्य ध्वनिकी कान्तिके समूहके बलसे जिन्होंने मनुष्योका मोहान्धकारका समूह दूर कर दिया है। ऐसे जे भगवान अरहन्तदेव सिंहासनके ऊपर विराजमान हैं, उनके अत्यन्त शांत शरीरको देख कर मुनि लोग ऐसा समझते हैं, मानो अत्यन्त ऊचे उदयाचल पर्वतके मस्तक पर जिसकी किरणोका समूह समस्त आकाशमें फैल रहा है, ऐसा सूर्यका मडल ही विराजमान हो॥११५-११६॥

द्वारा घिरा हुआ आपका सुवर्णमय शरीर ऐसा शोभायमान होता है, मानो देवोंके द्वारा घिरा हुआ मेरु पर्वतका शिखर ही हो ॥११८॥

देवैः समीपनियतैः तव पार्श्वभागे
उच्चैर्महाकरयुगेन सुवीज्यमानैः ।
श्वेतैः सहस्रकिरणैश्चमरीरुहैश्च
नाथ ! त्वदीय वपुषं कनकवदातम् ॥११९॥

शान्तं विभाति मनुजेन्द्रगणेन्द्रपूज्यं
सिंहासनादुपरि देव ! विराजमानम् ।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौंभम् ॥१२०॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके दोनो ओर अगल बगलमे देव नियत हैं, वे अपने बड़े २ हाथोसे ऊचे लेजा कर चमर ढोर रहे हैं। वे चमर सफेद हैं, और हजारो किरणवाले हैं। हे देव ! हे नाथ ! आपका सुवर्णके समान सुन्दर शरीर सिंहासनके ऊपर विराजमान है, और चक्रवर्ती इन्द्र आदि अनेक महापुरुष उसकी पूजा कर रहे हैं, तथा वह शरीर

अत्यन्त शान्त है। प्रभो! उन चमरोंसे वह आपका शरीर ऐसा शोभायमान है, मानो उदय होते हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद किसी झरनेसे गिरते हुए जलकी धारासे सुवर्णमय मेरु पर्वतका ऊंचा किनारा ही शोभायमान हो रहा हो ॥११९-१२०॥

रौप्यं सुवर्णमिलितं नितरां प्रदीप्तं
तेजोमयं निखिलरत्नमयं प्रशस्तम्।
वृत्तं सुपूज्यमपि नाथ! तव प्रसादात्
छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्तम् ॥१२१॥

अर्थ—हे भगवन्! आपके ऊपर लगे हुए तीनों छत्र सोने चांदीके बने हुए हैं अत्यन्त देदीप्यमान हैं, तेजोमय हैं, उनमें सब तरहके रत्न लगे हुए हैं, अत्यन्त सुन्दर हैं, गोल हैं, और हे नाथ! आपके ही प्रसादसे वे पूज्य हैं। ऐसे चन्द्रमाके समान आपके तीनों छत्र बड़े ही अच्छे शोभायमान होते हैं ॥१२१॥

उच्चैःस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापं
देवैर्धृतं सकलमङ्गलरूपमेव।

श्वेतं मलेन रहितं जिन ! ते नियोगात्
छत्रत्रयं तव विभो ! जयतात् त्रिलोके ॥१२२॥

अर्थ—हे प्रभो ! आपके तीनो छत्र बहुत ऊंचे विराजमान हैं, सूर्यकी किरणोके प्रतापको भी तिरस्कृत करते हैं, देवोके द्वारा धारण किये हुए हैं, समस्त मङ्गल रूप हैं, सफेद हैं, और हे जिन ! आपके सम्बन्धसे ही मल रहित वा अत्यन्त निर्मल हैं। हे नाथ ! ऐसे आपके तीनो छत्र इन तीनो लोकोंमें सदा जय शील हो ॥१२२॥

मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
श्रेष्ठं हरिन्मणिविगुंफिततीरभागम् ।
मध्ये ललामशुभरक्तमणिप्रकान्तं
छत्रत्रयं तव विभो ! जयतात् त्रिकाले ॥१२३॥

अर्थ—हे प्रभो ! मोतियोके समूहके जालसे जिनकी शोभा खूब बढ़ी हुई है, जो अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, जिनके किनारेके भाग हरित मणियों (पन्नाओसे) गुंथे हुए हैं। मध्य मध्यमें सुन्दर और शुभ लाल मणियोसे अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं। हे प्रभो ! ऐसे आपके तीनों छत्र तीनों कालोंमें सदा जय शील हो ॥१२३॥

छत्रं च धारयति मूर्ध्नि स एव लोके
लोकोत्तमो भवति सर्वनरेशपूज्यः ।
छत्रत्रय तव सुमूर्ध्नि विराजते तत्
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥१२४॥

अर्थ—हे भगवन् ! इस संसारमें जो कोई छत्र धारण करता है, वही मनुष्य संसार उत्तम गिना जाता है, और सब राजाओंके द्वारा पूज्य माना जाता है। हे प्रभो ! आपके श्रेष्ठ मस्तक पर तीन छत्र शोभायमान हो रहे हैं, वे आपको तीनों लोकोंके परमेश्वरपनेको प्रगट कर रहे हैं ॥१२४॥

गंभीरताररवपूरितदिग्विभागः
लोकानुरञ्जनपरः श्रुतिमिष्टनादः ।
दूरस्थभव्यजनमोदकरः प्रसन्नः
शक्राज्ञया नदति खे सुरदुन्दुभिस्ते ॥१२५॥

अर्थ—हे प्रभो ! जो गम्भीर और ऊंचे शब्दोंसे समस्त दिशाओंको पूरित कर रही हैं, जो लोगोंको अत्यन्त सन्तुष्ट करनेवाली है, जिनका शब्द कानोंको अत्यन्त प्यारा है, जो दूर रहनेवाले भव्य जीवोंको भी आनन्द देनेवाली है, और जो

उत्पन्न करनेवाली ध्वनिसे सुशोभित है ऐसी ये आपकी देवदुन्दुभि सबको आगमकी आगमनमें कह रही है ॥१२५॥

त्रैलोक्यलोकशुभसङ्गमभूतिदक्षः
मिथ्याप्रवादिमनसां खलु भेदकश्च।
भव्यप्रबोधनपरोऽशुभकर्मभेत्ता
नित्यप्रमोदनिचयः खलु दुन्दुभिस्ते ॥१२६॥

अर्थ—हे भगवन्! आपके ये दुंदुभि बाजे तीनों लोकके जीवोंको शुभ समागमकी विभूति देनेमें बड़े चतुर हैं। मिथ्या ऐसी सिद्धान्तवादियोंके भी हृदयको भेदन करनेवाले हैं। भव्य जीवोंके सम्बोधन करनेमें तत्पर हैं अशुभ कर्म घातिया कर्मोंको नाश करनेवाले हैं, और सदा आनन्दके समूहको प्रदान करते रहते हैं ॥१२६॥

१. मिथ्याप्रवादिविदुषां हृदि भेदकश्च। २ सुचयः

मन्द्रमेघगजजयघोषणघोषकःसन्
त्रैलोक्यमङ्गलकरः सुखदानदक्षः।
आयात यूयमिति हूतिकरः सुराणां
मोक्षार्थमेव विदुषां सुरदुन्दुभिस्ते ॥१२७॥

अर्थ—हे नाथ ! आपके देव दुदुभि बाजे श्रेष्ठ धर्म-राजकी जय घोषणाको घोषित करनेवाले हैं, तीनो लोकोंके जीवोंको मङ्गल करनेवाले हैं, सुख देनेमे चतुर हैं, और "तुम सब आओ तुम सब आओ" इस प्रकार देवोंको भी बुला रहे हैं, और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये विद्वानोको भी बुला रहे हैं ॥१२७॥

मुक्त्वाधमां क्षणसुखां वनितादिलक्ष्मीं
मुक्तिस्त्रियं वरसुखां परिणेतु कामः ।
यातीत्ययं जिनवरः खलु सूचकोऽयं
खे दुन्दुभिर्नदति ते यशसः प्रवादी ॥१२८॥

अर्थ—हे प्रभो ! ससारकी वनितादिक लक्ष्मी अधम है, और केवल क्षण भरके सुख देनेवाली है। इसीलिये इस संसारिक लक्ष्मीको छोड़ कर श्रेष्ठ सुखको देनेवाली ऐसी मुक्ति रूपी स्त्रीके साथ विवाहके करनेकी इच्छा करनेवाले, ये भगवान जिनेन्द्रदेव जा रहे हैं, इसीको सूचित करनेवाले तथा आपके यशको प्रगट करनेवाले ये आपके दुंदुभि बाजे आकाशमे बज रहे हैं ॥१२८॥

मंदारसुन्दरनमेरुसुपारिजात
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।

मध्यस्थकेशरसुगन्धितसर्वदेशा
नीचैः सुबंधनतया हतकर्मबंधा ॥१२६॥

अत्यंतनिर्मलतमा जिन ! ते नियोगात्
पूता त्वदीय चरणाम्बुजयोगयोगात् ।
संसारसिंधुतरणातुरतारिका वा
भूयात् ममोपरिसदा जिन ! ते प्रसादात् ॥१३०॥

अर्थ—हे जिनराज ! मन्दार, सुन्दर नमेरु पारिजात और सन्तान आदि कल्पवृक्षोंके फूलोंकी बड़ी भारी वर्षा आपके समवसरणमें होती है। वे फूल अपने मध्यमें रहनेवाले केशरसे सब देशको सुगन्धित करते हैं, उन फूलोंके बन्धन नीचे हैं, इसलिये वे औरोंके कर्म बन्धोंको भी दूर करनेवाले हैं। हे जिनेन्द्र देव ! आपके नियोगसे वह फूलोंकी वर्षा अत्यन्त निर्मल है, तथा आपके चरण कमलोंके सम्बन्धसे अत्यन्त पवित्र है, और वह फूलोंकी वर्षा संसार रूपी समुद्रसे पार होनेके लिये व्याकुल होनेवाले मनुष्योंको पार कर देनेवाली है, ऐसी वह फूलोंकी वर्षा हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मेरे ऊपर भी सदा होती रहो ॥१२६-१३०॥

गन्धोदविंदुशुभमंदमरुत्प्रयाता
माहात्म्यमाशु भुवने तव दर्शयन्ती ।
देहात्मचित्तसकलेन्द्रियहर्षदा ते
जीयात्सदा वृषनिकेतन ! पुष्पवृष्टिः ॥१३१॥

अर्थ—हे धर्म स्थान ! आपके समवसरणोंमे जो पुष्प-वृष्टि होती है वह सुगन्धित जलकी छीटोसे मिली हुई । तथा मन्द मन्द, चलनेवाली वायुके साथ ऊपरसे पड़ती है । वह पुष्पवृष्टि इस ससारमे आपके माहात्म्यको बहुत शीघ्र प्रगट करती है, तथा शरीर, आत्मा, मन और समस्त इन्द्रियोको प्रसन्न करनेवाली है । हे नाथ ! ऐसी वह आपकी पुष्पवृष्टि सदा जय शील रहा ॥१३१॥

कंठेऽथवा शिरसि नाथ ! सुधारणीया
देवैर्नरैर्गणधरैर्भुवि माननीया ।
पुण्यात्मिका तव पुरः खलु पुष्पवृष्टिः
दिव्यादिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥१३२॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके सामने जो पुष्पवृष्टि हो रही है, वह ऊपर आकाशमें गिर रही है, वह पुष्पवृष्टि कण्ठ अथवा

मस्तकपर धारण करने योग्य हैं देव मनुष्य और गन्धर्वोंको समान मनमें माननीय हैं पुण्यमय हैं, और दिव्य स्वरूप हैं। ऐसी यह पुष्पवृष्टि आपके वचनोंके समान अथवा दिव्यध्वनिके समान पड़ती हुई शोभायमान होती है ॥१३२॥

शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
भव्यात्मनां च भवसप्तकदर्शिका या ।
वैराग्यसागरसमृद्धिकरा च सौम्या
सूर्योपमाऽपि सुखदा मम बोधदा स्यात् ॥१३३॥

अर्थ—हे भगवन्! आपकी बहुत भारी प्रभा देदीप्यमान कान्तिके समूहसे सम्पूर्ण है तथा वह भव्य जीवोंको सात भव दिखलानेवाली है। इसके सिवाय वैराग्य रूपी महासागरको बढ़ानेके लिये वह चन्द्रमाकी चाँदनीके समान है। वह प्रभा सूर्यके समान होकर भी सुख देनेवाली है। इसलिये वह आपकी प्रभा मुझे ज्ञान देनेवाली हो ॥१३३॥

लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती
सताश्वकोटिशतभाऽपि निरीक्षणीया ।
लोकानुरञ्जनपरा भुवि सत्तमा च
शांतिप्रदा सुखनिधिः जयतात् प्रभा ते ॥१३४॥

अर्थ—हे प्रभो ! आपकी प्रभा तीनों लोकोमें होने वाले समस्त प्रभावशाली पदार्थोंकी प्रभाको तिरस्कृत करती है। वह आपकी प्रभा सैंकडों करोड़ सूर्योंकी प्रभाके समान होने पर भी अच्छी तरह देखने योग्य है, समस्त जीवोंको प्रसन्न करनेवाली है, संसारभरमें सर्वश्रेष्ठ है, जीवोंको शांति प्रदान करनेवाली है, और सुखोंका खजाना है। हे प्रभो आपकी ऐसी वह प्रभा सदा जय शील हो ॥१३४॥

सूर्यप्रभेव खररश्मिमया प्रदीप्ता
बाह्यांधकारमिव जीवमनोंधकारम् ।
सम्यक् विदीर्य सहसा हि विकाशयन्ती
स्वात्मस्वरूपमिव नाथ ! तव प्रभावम् ॥१३५॥

चन्द्रप्रभेव सुखदा हृदयातिरम्या
धर्मामृतं भवहरं परितो स्रवन्ती ।
प्रोद्याद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्या ॥१३६॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपकी प्रभा सूर्यकी प्रभाके समान तीक्ष्ण किरणोंवाली है, और अत्यंत देदीप्यमान है वह प्रभा

बाह्य अंधकारके समान जीवोंके हृदयान्धकारको भी अच्छी तरह नष्ट करती है, तथा हे नाथ ! आत्माके स्वरूपके समान आपके प्रभावको भी प्रगट करती है । इसीप्रकार वह प्रभा चन्द्रमाकी प्रभाके समान सुख देनेवाली है हृदय और नेत्रोंको मनोहर है। और चारों ओर से संसारको नाश करने वाले धर्मामृतकी वर्षा करती है । हे प्रभो ! चन्द्रमाकी चांदनी के समान वह आपकी प्रभा निरंतर उदय होते हुए अनेक सूर्यों की कांति से ही शांत और शीतल होनेके कारण रातकोभी जीतती है ॥१३५-१३६॥

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।
पुण्यप्रभाववशगोऽपि सुपुण्यरूपः
भव्यात्मबोधनपरोऽखिलजीवमित्रः ॥१३७॥
तिर्यग्निगोदपशुदुःखविरोधदक्षः
संसारसिंधुतरणो खलु पोतराजः ।
नाथैकयोजनसमोऽपि सुरानुयोगात्
दिव्यध्वनिर्जयति ते स्वसभानुरूपः ॥१३८॥

अर्थ— हे नाथ आपकी यह दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष के जानेके मार्गको ढूंढनेमें अत्यंत निपुण है, और तीनों लोकों में श्रेष्ठ धर्मके तत्त्वोंको कथन करनेमें एक अद्वितीय चतुर है ।

यह दिव्यध्वनि पुण्यके प्रभावके वश है, तथापि महापुण्यरूप है, भव्य जीवोंको सम्बोधन करने॰ सदा तत्पर है, समस्त जीवोंका भला करनेवाली है, तिर्यंच निगोद और पशुओंके दु:खोंको दूर करनेमें अत्यन्त चतुर है, संसार रूपी समुद्रमें पार होनेके लिए बड़े जहाजके समान है, और एक योजन प्रमाण होकर भी मागध जातिके देवोंके अनुयोगमें आपकी बारह योजन प्रमाण सभाके समान होजाती है। हे प्रभो! ऐसी यह आपकी दिव्य-ध्वनि सदा जय शील रहे ॥१३७-१३८॥

शुद्धात्मतत्त्वकथनैकवरः प्रवक्ता
मिथ्यांधकारनिधनेऽदिवाकरश्च ।
आत्मस्वभावपरभावविभेदको वा
जीवादितत्त्वपरिचायकदीपको वा ॥१३९॥

दिव्योऽपि वर्णरहितोऽपि सुवर्णरूपः
नागेन्द्रसोमसुरनाथनरेशपूज्यः
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥१४०॥

अर्थ—हे भगवन्! आपकी यह दिव्यध्वनि शुद्ध आत्म-तत्त्वके स्वरूपको कहनेमें एक श्रेष्ठ वक्ताके समान है, मिथ्यात्

रूपी अन्धकारको नाश करनेके लिए सूर्यके समान है, आत्माके स्वभाव और परभावको भिन्न भिन्न करनेवाली है, जीवादिक तत्त्वोंको दिखलानेवाली दीपकके समान है, यह दिव्यध्वनि दिव्य स्वरूप है, तथा वर्ण रहित होकर भी सुवर्ण रूप है। यह दिव्यध्वनि चन्द्र-नागेन्द्र-सुरेन्द्र-और नरेन्द्रोंके द्वारा पूज्य है, विशद अर्थको धारण करनेवाली है, और समस्त जीवोंकी भाषा रूप परिणत होनेका इसमें अनुपम गुण है। ऐसे अनुपम गुणसे यह शोभायमान है। हे प्रभो! आपकी ऐसी दिव्यध्वनि सदा त्रिकाल होती रहती है ॥१३९-१४०॥

उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती
व्याघ्राहिभिल्लगजतारणकर्णधारौ ।
संसारसिंधुतरणोद्यतमानसोऽहं
पादौ जिनेन्द्र ! भवतः शिरसा नमामि ॥१४१॥

अर्थ—हे भगवन्! आपके दोनों चरण कमल खिले हुए सुवर्णमय नवीन कमलोंके समूहकी कान्तिको धारण करते हैं। बाघ, सर्प, भील, हाथी आदि जीवोंको पार कर देनेके लिये खेवटियाके समान हैं। हे प्रभो! मैं भी इस संसार रूपी महा-सागरसे पार होना चाहता हूं। इसलिये हे जिनेन्द्र! मैं भी

आपके उन दोनों चरण कमलोको मस्तक झुका कर नमस्कार करता हूं ॥१४१॥

पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ
पद्मादिचिन्हसहितौ ललितौ कृतार्थौ ।
भव्यात्मनां सुखकरौ सततेक्षणीयौ
पादौ जिनेन्द्र ! भवतः मनसा स्मरामि ॥१४२॥

अर्थ—हे जिनराज ! आपके दोनो चरण कमल चारो ओरसे देदीप्यमान होनेवाले नखोकी कान्तिके समूहसे अत्यन्त सुन्दर जान पड़ते हैं, वे कमल आदि शुभ चिन्होंसे सुशोभित हैं, अत्यन्त सुन्दर हैं कृतकृत्य हैं, भव्य जीवको सुख देने वाले हैं, और सदा देखने योग्य हैं। हे भगवन् ! ऐसे आपके उन दोनों चरण कमलोंको मैं अपने मनसे स्मरण करता हूं ॥१४२॥

पुण्योदयादनुगतौ तपसा हि लब्धौ
नागेन्द्रचन्द्रमनुजेन्द्रसुरेन्द्रसेव्यौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
तीर्थं च तत्र भवति स्वयमेव लोके ॥१४३॥

सालत्रयं कनकरत्नमयं विचित्रं
देवांगनानटनशोभितनृत्यशालाः ॥१४५॥
आस्थानमण्डपसभा ननु धूलिशालं
स्तभं पुरः सकलवादिमदान्तकं वा
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ॥१४६॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके समवसरणमें वृक्षावली है, भवन है, ध्वजा पताका है, सुन्दर सरोवर है, जल, कमल, चक्रवाक वा हंसोंसे सुशोभित खाई है, सुवर्ण और रत्नोंसे बने हुए अनुपम तीन कोट हैं, देवाङ्गनाओंके नृत्यसे सुशोभित होनेवाली नृत्यशाला हैं, बारह सभाओंसे सुशोभित आस्थान मंडप है, चारो ओर धूलिशाल है, और आपके सामने ही समस्त वादियोंके मदको सर्वथा नाश करनेवाला मानस्तम्भ है। हे प्रभो ! आपके धर्मोपदेशके समय समवसरणमें ऊपर लिखे अनुसार जैसी विभूति आपकी है, वैसी विभूति बुद्धादिक किसी भी परधर्माचार्यकी नहीं है ॥१४५-१४६॥

जन्मोद्भवा दश दशातिशयाः प्रपन्नाः
ज्ञानोद्भवा ननु चतुर्दश देवजाताः ।

सुप्रातिहार्यभवभूतिरनन्तरूपा
ज्ञानप्रवीर्यसुखदर्शनरूपलक्ष्मीः ॥१४७॥

एते गुणास्त्वयि जिनेश्वर ते सभायां
नान्यत्र केशवविरंचिमहेश्वरेषु ।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥१४८॥

अर्थ—हे जिनराज ! आपकी समवसरण सभामें आपके जन्म समय में होनेवाले दश अतिशय शोभायमान हैं, केवल ज्ञानके समय होनेवाले दस अतिशय विराजमान हैं और देवोंके द्वारा किये गये चौदह अतिशय अलग शोभा दे रहे हैं इसके सिवाय आठों महाप्रातिहार्योंकी विभूति अलग शोभा दे रही है, और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनत वीर्य रूप, अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी आपको सर्वोत्कृष्ट बतारही है। हे भगवन् ! आपकी सभामें आपके ये गुण विराजमान हैं, वे गुण ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि किसी देवमें नहीं हैं, सो ठीक ही है। अन्धकारको सर्वथा नाश करनेवाली जैसी प्रभा सूर्यमें होती है। वैसी प्रभा थोड़ा बहुत चमकनेवाले तारोंमे कभी नहीं हो सकती ॥१४७-१४८॥

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
किं वोर्जयन्तशिखरं ननु मेघराजं
मुच्चैस्तमं सकलयूथपराजराजम् ॥१४९॥
आलानशृंखलविहीनमनंकुशं च
शुण्डैः सुवीरपुरुषानपि तर्जयन्तम् ।
स्तम्बेरमं सकललोकभयप्रदं तं
हस्तेन ताडयति नाथ ! तवाग्रभक्तः ॥१५०॥

अर्थ—हे भगवन्! जिसके गंडस्थलमें काला काला मद बह रहा है, और उस मदसे जिसका कपोल भाग अत्यंत चंचल होरहा है, तथा उस मदके कारण जिसके कपोलों पर झंकार करते हुए मदोन्मत भ्रमर चारों ओर घूम रहे हैं। उन भ्रमरोंके दुखसे जिस हाथीका क्रोध अत्यंत बढ़ रहा है। तथा वह हाथी अत्यंत ऊंचा है। गिरनार पर्वतकी शिखरके समान, अथवा श्याम बादलोंके समूहके समान काला और ऊँचा जान पड़ता है, जो समस्त हाथियोंका स्वामी है। जिसका न खूंटा है, न सांकल है, और न अंकुश है, जो अपनी सूंडसे ही बड़े २ वीर पुरुषोंको खदेड़ रहा है। और समस्त संसारको भय उत्पन्न कर

रहा है, ऐसा हाथी यदि सामने आजाय तो भी हे प्रभो! आपका श्रेष्ठ भक्त पुरुष उस हाथीको अपने हाथसे ही मार कर वशमें कर लेता है ॥१४९-१५०॥

उद्घस्थतुण्डमनिशं बहुगर्जयन्तं
क्रोधेन शुण्डमचिरं परिवर्तयन्तम्।
वन्यान् समस्तविटपान् ननु दारयन्तं
कुम्भेन दीर्घदृषदानपि चूर्णयन्तम् ॥१५१॥

उत्कीर्णयन्तमचलं दशनैः नितान्तं
पादैः स्थिरामपि धरां परिकम्पयन्तम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥१५२॥

अर्थ—जिसने अपना मुंह ऊपरकी ओर उठा रक्खा है, जो बार बार गर्ज रहा है, जो क्रोधसे अपनी सूंडको शीघ्रताके साथ चारों ओर घुमा रहा है, जो वनके समस्त वृक्षोंको उखाड कर फेंक रहा है, जो अपने मस्तकसे बड़े २ पत्थरोंको भी चूर चूर कर रहा है, जो अपने दांतोंसे पर्वतोंको भी अच्छी तरह उकेर रहा है, जो अपने पैरोंसे स्थिर रहनेवाली पृथ्वीको भी कम्पायमान कर रहा है, जो ऐरावत हाथीके

समान है, अत्यंत उद्धत है, और सामने आ रहा है। ऐसे हाथी को भी देख कर हे नाथ! आप के आश्रित रहनेवाले भव्य जीवोंको कभी भय नहीं होता ॥१५१-१५२॥

भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।
कंठे ललामघनकेशरशोभमानः
गर्जन् नितांतभयदश्च कठोरशब्दैः ॥१५३॥
क्रोधेन तप्तहृदयोऽपि बुभुक्षितोऽपि
कंठीरवः शुनकवल्लिहते पुमांसम् ।
देव! त्वदीयचरणाम्बुजसेवमानं
विद्धोऽपि लुब्धकशरेण क्रूरेण नाथ! ॥१५४॥

अर्थ—जिसने अनेक हाथियोंके मस्तक विदीर्ण कर दिये हैं, और उन मस्तकोंसे गिरे हुए लाल रक्तसे मिले हुए सफेद मोतियोंसे जिसने समस्त पर्वतकी पृथ्वी सुशोभित करदी है। जिसके कण्ठमें अत्यन्त सुन्दर और घनी केशर (बालोंका गुच्छा) शोभायमान है। जो अत्यन्त कठोर और भय उत्पन्न करनेवाले शब्दोंसे गरज रहा है। जो भूखा है, जिसका हृदय क्रोधसे संतप्त हो रहा है, और जो व्याधके तेज बाणसे विधा हुआ है,

ऐसा सिंह भी हे नाथ ! हे प्रभो ! आपके चरण कमलकी सेवा करनेवाले पुरुषको कुत्तेके समान चाहता है ॥१५३-१५४॥

कृष्णप्रभो दृषदचूर्णकरो हि खड्गी
भल्लो वने सकलजीवसुरक्तपायी ।
क्रूरो वृको वनचरो भयदो वराहः
रेखांकितो वनजजीवभयप्रदायी ॥१५५॥
व्याघ्रो मृगादनवरो ननु चित्रवर्णः
कृष्णो मृगेन्द्रतनयो मृगराजभूपः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥१५६॥

अर्थ—हे भगवन् ! काले रङ्गका गेंडा पत्थरको भी चूर्ण कर देता है। वनका रीछ सब जानवरोंका वा सब जीवोंका रक्त पी जाता है। भेड़िया बहुत ही क्रूर होता है। जङ्गली सूअर अत्यन्त भयङ्कर होता है, अनेक रेखाओंसे सुशोभित बाघ जङ्गलके सब जीवको भय देता है। अनेक रङ्गका चीता भी बहुत ही दुःखदायी होता है। काला सिंह सब सिंहोंका राजा कहलाता है। ये सब जानवर अत्यन्त भयङ्कर होते हैं, तो यदि ये सब जानवर सामने आवें तथा सिंह भी यदि दौड़ता हुआ

भी आवें और हे प्रभो ! आपके दोनो चरण कमल रूपी पर्वतका आश्रय लेनेवाले पुरुषके पैरोंमें लिपट जाय तो भी ये सब जानवर या सिंह उस पुरुषके ऊपर किसी प्रकारका हमला नहीं कर सकते ॥१४४-१४६॥

कल्पान्तकालपवनोद्धतवन्हिकल्पं
महाग्निर्हेतिपरितापितमेघनीरम् ।
सीता शशाम तव नामजलेन सद्यः
त्वन्नाम नाथ ! दहन सलिलीकरोति ॥१५७॥

अर्थ—हे प्रभो ! जो कल्पकालके अन्त समयमें उठनेवाले वायुसे अत्यन्त तीव्र होनेवाली अग्निके समान है, और जो अपनी ज्वालाकी गर्मीसे बादलोंके पानी तकको गर्म कर रही है ऐसी अग्नि भी सीताने आपके नाम रूपी जलसे शीघ्र ही शान्त करदी थी। हे नाथ ! इसीलिये कहना पड़ता है कि आपका नाम भी अग्निका पानी बना देता है ॥१५७॥

दावानलं ज्वलितमुज्वलमुत्स्फुलिङ्गं
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतंतम् ।
धू धू रवेन बधिरीकृत सर्वलोकं
कृष्णेन धूमनभसा भृतलोकमध्यम् ॥१५८॥

चेतश्च दर्शकगणस्य विदीर्णयन्तं
तन्मध्यवीरयमिनं प्रविलोक्य धीरः ।
स्मृत्वा त्वदीयचरणं च पयोदतुल्यं
भव्यः शशाम सहसा पवनंजयोऽपि ॥१५९॥

अर्थ—हे नाथ ! जो अग्नि वनमे दावानल रूपसे लग रही है, जो खूब जल रही है, जो ऊपरको उठ रही है, जिसके स्फुलिंगे भी ऊपरको उठ रहे है, जो समस्त ससारको भस्म कर देनेके ही लिये मानो सामने बढ़ी चली आ रही है, जिसके धू धू शब्दसे समस्त लोक बहिरा हो रहा है, जिसके काले धूएसे लोकका मध्य भाग सब अन्धकारके समान पूर्ण रूपसे भर गया है, और जो देखनेवालोके हृदयको विदीर्ण कर रही है ऐसी अग्निको देख कर तथा उस अग्निके मध्य भागमे धीर वीर मुनियोको देख कर भव्योत्तम धीर वीर हनुमानने भी मेघके समान आपके चरण कमलोका स्मरण करने मात्रसे ही वह सब अग्नि उसी क्षणमें शान्त करदी थी ॥१५८-१५९॥

दावानलं सकलजीवहर कृतान्तं
मत्स्यादिजन्तुशमनं वडवानलं वा ।
गेहादिधान्यधनकुप्पहरं च वन्हिं
त्वन्नाम कीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥१६०।

अर्थ—हे प्रभो ! दावानल अग्नि वनके समस्त जीवोंको मार देनेवाली यमराजके समान है। वडवानल अग्नि मगर मच्छ आदि जलचर जीवोंको नाश करनेवाली साक्षात् मृत्युके समान है। और साधारण अग्नि घर, धन, धान्य, वर्तन, वस्त्र आदि सबको नाश कर देनेवाली है। हे प्रभो ! इस सब प्रकार की अग्नियोंको आपका नाम जप रूपी जलसे शीघ्रही शान्त कर देता है ॥१६०॥

वालोऽपि नाथ ! सततं जिनराजभक्तः
स्मृत्वा त्वदीयचरणं चरणेन पूतम् ।
रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं
हस्ते निधाय भुजगं रमते न चित्रम् ॥१६१॥

अर्थ—हेप्रभो ! जो सदा भगवान जिनेन्द्रदेवका भक्त है, ऐसा बालक भी पूर्ण चारित्रसे पवित्र हुए आपके चरण कमलोंका यदि स्मरण करले तो फिर वह जिसके नेत्र लाल होरहे हैं, और जो मदोन्मत्त कोयलके कण्ठके समान काला है, ऐसे सांपकोभी हाथ पर रखकरउससे खेलता है, इसमें किसी प्रकारका कोई आश्चर्य नहीं है ॥१६१॥

ब्रह्मव्रतेन सहितः दशधर्मयुक्तः
सम्यक्त्वशङ्कहृदयो वरबोधदत्तः ।

क्रोधोद्धत फणिनमुत्फणमापतन्तं
हस्तात्प्रगृह्य सहसा विद्धाति कंठे ॥१६२॥

अर्थ—जो पुरुष ब्रह्मचर्यव्रतको पूर्ण रूपसे पालन करता है, दश धर्मोंको पालन करता है जिसका हृदय सम्यग्दर्शनमें अत्यन्त शुद्ध है, और जो सम्यग्ज्ञान धारण करनेमें भी चतुर है, ऐसा पुरुष जो क्रोधसे उद्धत होरहा है अपना फण ऊपरको उठाये हुए है, और सामने आ रहा है ऐसे सर्पको भी हाथसे उठा कर बहुत शीघ्र अपने कंठमे धारण कर लेता है ॥१६२॥

वन्यान् समुद्रजलगान् गुरुपार्वतीयान्
श्वेतान् सुपीतहरितान् बहुकृष्णकायान् ।
पक्षैः विहायसि गतान् भुविगर्तगांश्च
नानाप्रकारभुजगान् ननु वृश्चिकांश्च ॥१६३॥
अन्यान् शयून् विषधरान् खलमालुधानान्
कीटान् विषाक्तविहगान् तृणनाशकांश्च ।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंक-
स्त्वंनाम नागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥१६४॥

अर्थ—हे भगवन्! जिस पुरुषके हृदयमें आपका नाम रूपी नाग दमनी विराजमान है, वह पुरुष जङ्गली सर्पोंको, समुद्रके गहरे जलमें उत्पन्न होनेवाले सर्पोंको, बड़े बड़े पर्वतोंमें रहनेवाले सर्पोंको, सफेद पीले हरे और काले सर्पोंको, पंखोंके द्वारा आकाशमें उड़नेवाले सर्पोंको, पृथ्वीके भीतर गहरे गढोंमें रहनेवाले सर्पोंको, बड़े बड़े विषधर अजगरोंको, खाटके आकारके अनेक वर्णके सर्पोंको तथा और भी अनेकके प्रकार सर्पोंको, बिच्छुओंको, कीड़ोंको, और उसी समय जीवोंको नाश कर देनेवाले विषैल पक्षियाको, बिना किसी शङ्काके अपने पैरोंसे ठुकरा देता है ॥१६३-१६४॥

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनादं
नानाध्वजैः निखिलशस्त्रभृतैरथैश्च ।
पूर्णीभृतं धनुपत्राणाधृतैः सखड्गैः
कुंतादिशस्त्रमहितैः पदगैः संमतात् ॥१६५॥

उष्ट्रैः समुन्नतमं भुवि भीमकाय-
माजौवलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
श्रद्धाकर चरणाचापसमुद्भवे ते
त्वा गुणे जयति नाथ! जिनेशभक्तः ॥१६६॥

श्वभ्रप्रदं सकलदुःखकरं नितान्तं
पञ्चप्रकारभवबन्धकारकं वा ।
स्वात्मस्वरूपविमुखं परभावरूपं
पापात्मकं निखिलपापभवप्रबीजम् ॥१६७॥
एवं जिनेश ! सततं खलकर्मरूपं
मोक्षार्गलं सुखहरं भुवि मोहनीयम्
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥१६८॥

अर्थ—संसारमें यह मोहनीय कर्म सब प्रकारके दुःख देनेवाला है। तथा अत्यंत दुःख देनेवाला है, नरकमें पहुंचाने वाला यही मोहनीय कर्म है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव इन पांचों प्रकारके संसारमें परिभ्रमण करनेका कारण यही एक मोहनीय कर्म है, यह मोहनीय कर्म अपने आत्माके स्वरूपसे विपरीत रूप है, तथा आत्मासे भिन्न पुद्गल मय है, यह मोहनीय पाप स्वरूप है, और समस्त पाप उत्पन्न करनेका कारण है। इस के सिवाय यह मोहनीय कर्म अत्यंत बलवान् है, दुष्ट घातिया कर्मोंका राजा है, मोक्षकी प्राप्तिमें रोक लगानेवाला अर्गल बेंडा है। और सबप्रकारके सुखोंका नाश करनेवाला है। हे जिनराज! ऐसा यह मोहनीय कर्म आपकी स्तुति करने मात्रसे इस प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे उदय होते हुए सूर्यकी किरणोंके समूहसे छिन्नभिन्न हुआ अंधकार बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥१६७ १६८॥

कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह—
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
उग्रप्रपातचयशैलसमुत्तरन्ते—
वीरैर्भयानकतमे विषमे नितान्ते ॥१६९॥

विस्फाटितोदरतुरङ्गचलत्प्रवाह—
रक्तोच्चयेन घृणिते भृतकीकसे वा।

चूर्णैःरथैः परिभृते मृतपद्गपूर्णे
युद्धे चिरं जयति नाथ! तवाग्रभक्तः ॥१७०॥

अर्थ—जिस युद्धमें बरछोकी नोकसे अनेक हाथी छिन्न भिन्न किये गये हैं, तथा उन छिन्न भिन्न किये गये हाथियोसे जो खूनकी नदी निकलकर वह रही है और वडे वगसे वह रही है उससे पार होनेके लिये बडे बडे योद्धा वहापर जल्दी मचा रहे हैं। जहापर मरे हुए ऊटोंके ढेर लगकर पर्वत बन गये हैं, और उन पर चढ उतर कर पार होते हुए योद्धाओंसे जो युद्ध अत्यंत भयानक होरहा है। घोड़ोके पेट फट जानेसे जो उनमें से रक्तकी धारा बह रही है, उससे वह युद्ध अत्यत घृणित दिखाई देता है। जिस युद्धमें जगह जगह हड्डियां पडी हुई हैं, टूटे हुऐ रथोसे जो भररहा है। और मरे हुए पयादोसे जो ऊचा हो रहा है. ऐसे युद्धमे भी हे नाथ! आपकी भक्ति करने वाला भक्त पुरुष चिर कालतक विजय प्राप्त करता रहता है ॥१६९-१७०॥

चक्रैः शरासनशरैः करवालपुञ्जैः ·
कुंतैः घनैः परशुभिर्वरतोमरैश्च
वीरै रथैः गजतुरङ्गचयैः सशस्त्रैः
पूर्णे नितांतभयदे शवखण्डयुक्ते ॥१७१॥

अत्यंतदानकरशीकरपंकिले च
ढक्कारवे भुवि यथा नृपवज्ररश्मिः।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षाः
त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥१७२॥

अर्थ—जो युद्ध चक्र, धनुषबाण, तलवारोंके समूह, बरछा, घन, फरसा, तोमर और अनेक योद्धाओंसे भरा हुआ है तथा शस्त्रोंसे भरे हुए रथ हाथी घोडोंके समूहसे भरा हुआ है, जिसके देखनेसे डर लगता है, जिसमें असंख्य मुरदोंके टुकड़े पड़े हुए हैं हाथियोंके गंडस्थलसे बहते हुए मदसे तथा उनकी सूंडसे निकलती हुई पानीकी छींटोंसे जिसमे अच्छी कीचड़ हो रही है और जिसमें बाजोंके शब्द चारों और सुनाई दे रहे हैं, ऐसे युद्धमें भी हे प्रभो! जिन्होंने आपके चरण कमलोंके वनका आश्रय लेरक्खा है, और जिन्होंने किसीसे भी न जीते जा सकें ऐसे दुर्जय युद्धको जीतने वाले महा योद्धा भी जीत लिये हैं ऐसे आपके भक्त पुरुष इस संसारमें राजा वज्रकिरणके समान विजयही प्राप्त करते हैं ॥१७१-१७२॥

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।

गंभीरनीरवह्नुभंगमनूह्नम्को
कर्मोदयाद्व पतिता इव गत्रुयोगात् ॥१५३॥
सत्यस्वगुरुहृदयाः सदया दयाल्वः
स्वनामसंस्तवरवात् त्वत्तु ते मनुष्याः
श्रीमाल्तसूक्तसहशः सहसा सुनाम्यं
तीरं प्रयांति च सर्वान्त दोषतुल्याः ॥१५४॥

गंभीरनीरपरिचुंबितनागलोके
भीमे भयानकमहावडवानलेन ।
झंझासमीरणविशालतरङ्गवृन्दे
कुम्भीररोहिततिमिंगिलमत्स्यजाले ॥१७५॥

तीर्यत्तुषारशिखरे जनशब्दशून्ये
लक्षैकयोजनतटे च महासमुद्रे ।
रङ्गत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥१७६॥

अर्थ-हे भगवन्! जो समुद्र अपने गंभीर जलसे नागलोक को भी छू रहा है, भयङ्कर महा वड़वानल अग्निसे जो अत्यंत भयानक है झंझा वायुसे जिसमें अनेक बड़ी बड़ी तरंगे उठ रही हैं, कुंभीर रोहित तिमिंगिल और मत्स्य आदि अनेक प्रकारके मगरमच्छोंसे जिसपर जाल (सा) बिछ रहा है, जिसमें बड़े बड़े बरफ के शिखर तैर रहे हैं, जिसमें मनुष्योंका शब्द तक सुनाई नहीं देता। और जो किनारेसे एक लाख योजन दूर है। ऐसे महासमुद्र में जिन लोगोंके जहाज बड़ी बड़ी तरंगोंके समूहमें डगमगा रहे हैं, वे मनुष्य भी आपका स्मरण करने मात्रसे सबतरहके उपद्रवोंसे रहित होकर किनारे तक पहुच जाते है ॥१७५-१७६॥

रोगी भी आपके नाम रूपी मंत्रका पाठ करने मात्रसे चिरजीव हो जाते हैं। अच्छे होकर चिर काल तक जीवित रहते हैं ॥१७८॥

रोगैः शरीरसहजैः शतकोटिलक्षैः
वातादिदोषजनितैश्च सहस्रलक्षैः ।
देशोद्भवैः समयजैः शतशंखभेदैः
साध्यैश्च साध्यरहितैः खलु कष्टसाध्यैः ॥१७९॥

अत्यंतपीडिततमाः शवतुल्यदेहाः
भैषज्यहेतुरहिता मरणोन्मुखाश्च ।
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहाः
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥१८०॥

अर्थ—हे भगवन्! इस संसारमें शरीरके साथ उत्पन्न होने वाले रोग सैकड़ों करोड़ हैं वात पित कफसे उत्पन्न होने वाले रोग भी करोड़ों हैं, तथा खास खास देशोंमें उत्पन्न होने वाले करोड़ो रोग हैं और खास खास समयमें होनेवाले रोग करोड़ो हैं, इनमेसे कितने ही रोग साध्य हैं, कितने ही असाध्य हैं, और कितने ही कष्ट साध्य हैं। इन समस्त रोगोंसे जो अत्यंत दुखी है, मुर्देके समान जिनका शरीर शिथिल हो

रहा है, जिनके पास औषधि करनेका भी कोई साधन नहीं है, और जो बिलकुल मरनेके सन्मुख हो रहे हैं । ऐसे पुरुषोंका शरीर भी आपके चरण कमलकी रज रूपी अमृतके लगाने मात्रसे सुवर्णके समान अत्यत सुन्दर हो जाता है ॥१७९-१८०॥

आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगाः
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघा ।
कोष्टेषु गाढपिहितेषु धृतागवासाः
दुष्टात्मनो नरपतेरतिरोषपात्राः ॥१८१॥
ते चिन्तयन्ति यदि नाम तवैव चित्ते
बन्धोज्झिता सपदि यान्ति बहिः प्रदेशे ।
भूपैः सुरेशनिकरैः सततं सुसेव्याः
ख्याता भवन्ति च यथा मुनिमानतुंगाः ॥१८२॥

अर्थ — जो पुरुष सिरसे लेकर पैर तक बड़ी २ सांकलों से जकड़े हुए हैं, तथा बड़ी २ करोड़ों बेड़ियों से जिनकी जंघाएं खूब अच्छी तरह बांधदी गई हैं जो गाढ़ अंधकारमय कोठे मे बन्द पड़े हैं, और दुष्ट राजा जिनपर अत्यत क्रोधित हो रहा है । ऐसे पुरुष भी यदि अपने हृदयमें आपका नाम स्मरण करे तो वे उन समस्त बन्धनोंसे छूटकर शीघ्र ही बाहर

आ विराजमान होते हैं, अनेक राजा और अनेक इन्द्रादिकदेव उनकी सदा सेवा करते हैं, और वे मुनिराज श्रीमानतुङ्गाचार्य के समान संसारमे अत्यत प्रसिद्ध हो जाते हैं ॥१८१-१८२॥

कारागृहेषु पतिताः परितोऽपि बद्धाः
काष्ठेन लोहनिगडेन वरत्रया च ।
रक्षानिमित्तनियतैः सुभटैः परीताः
देहं मनागपि न चालयितुं समर्थाः ॥१८३॥

घोरेषु कष्टनिवहेषु निबद्धदेहाः
भक्तान्नपानरहिताः बहुरोगग्रस्ताः ।
त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाःस्मरन्तः
सद्यःस्वयं विगतबंधभयाः भवन्ति ॥१८४॥

अर्थ—जो पुरुष जेलखानोंमें पड़ेहुए हैं, काठसे लोहकी बेडियोसे अथवा बड़ी बड़ी रस्सियोंसे जो चारो औरसे बन्धे हुए हैं, उनकी रक्षाके लिये नियत हुए योद्धाओंसे जो घिरे हुए हैं, जो अपने शरीरको किञ्चित मात्र भी इधर उधर हिलानेमें असमर्थ हो रहे हैं, जिनका शरीर घोर कष्टमें पड़ा हुआ है, जिनको खाने पीनेको कुछ नहीं मिल रहा है, और जो अनेक रोगोसे घिरे हुए हैं, ऐसे पुरुष भी यदि आपके नाम रूपी मंत्र

को बारबार स्मरण करें तो वे शीघ्र ही अपने आप बन्धनके भयसे सर्वथा रहित हो जाते हैं ॥१८३-१८४॥

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
विद्युद्भवं सलिलजं तनुजाविचित्रं
किं वा भवार्णवभवं नरकादिरूपम् ॥१८५॥

रोगोद्भवं नृपतिजं बहुमानसं च
दुःख च पंचभवजं सततप्रयातम् ।
स्तुत्यानया विशदया गुणरूपया ते
नाशं प्रयाति सकलं जिन ! ते प्रसादात् ॥१८६॥

अर्थ—मदोन्मत्त हाथी, सिंह, दावानल अग्नि सर्प, युद्ध, समुद्र, जलोदर और बन्धनसे उत्पन्न होनेवाले दुःख, बिजलीसे उत्पन्न होनेवाले दुःख, पानीसे उत्पन्न होनेवाले दुःख, शरीरसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके दुःख, ससाररूपी महासागरमें होनेवाले नरकादि रूप अनेक दुःख, रोगोंसे उत्पन्न होनेवाले, राजासे उत्पन होनेवाले दुःख, मानसिक दुःख और अनादि कालसे चले आए द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव रूप पाचो प्रकारके ससरण रूप दुःख, इस ससारमे प्रगट होते हैं। वे सब दुःख

हे भगवन्! आपके प्रसादसे आपके गुणोंसे बनाई हुई इस विशद स्तुतिसे ही नष्ट हो जाते हैं ॥१८५-१८६॥

जन्मोद्भवं सकलदेहनिपीडयत्तत्
दारिद्रजं मरणजं बहुरोगजातम्।
दुःसन्ततेः हृदयविद्धकरं नितान्तं
वार्धक्यजं सुखहरेष्टवियोगरूपम् ॥१८७॥
चौरोद्भवं शठभवं परराष्ट्रजातं
संसारभीषणवने परितो भयं वा।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥१८८॥

अर्थ—इस संसारमें समस्त शरीरको पीड़ा देनेवाला जन्मका भय है, दरिद्रताका भय है, मरणका भय है, अनेक रोगोंका भय है, हृदयको अत्यन्त छिन्न भिन्न कर देनेवाला खोटी सन्तानका भय है सुखको हरण करने वाला इष्ट वियोग का भय है, बुढ़ापेका भय है, चोरोंका भय है, दुष्टोंका भय है, और पर चक्रका भय है। अथवा यों कहना चाहिये कि इस ससाररूपी भीषण वनमें चारों ओर भय ही भय है। हे भगवन्! जो बुद्धिमान् मनुष्य आपके इस स्तोत्रका अध्ययन करता है

उसका वह समस्त भय स्वय डरकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥१८७-१८८॥

सद्दृष्टिरम्यमुकुटेन विराजमानः
चारित्रवस्त्रसहितो दशधर्मच्छत्रः ।
विज्ञानभूषणभरः सुतपोवयस्यः
ध्यानाश्वपृष्टपरिशोभितरम्यदेहः ॥१८९॥
सोऽयं वरः वररमां परिणेतुकामः
स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्रगुणैर्निबद्धाम् ।
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पां
कंठे निधाय वरति स्वयमेव मुक्तिम् ॥१९०॥

अर्थ—हे भगवन् ! जो पुरुष शुद्ध सम्यग्दर्शन रूपी मनोहर मुकुटसे शोभायमान है, जो चारित्ररूपी वस्त्रोंको धारण किये हुए है, दश धर्म रूपी छत्र जिसके ऊपर फिर रहा है, सम्यग्ज्ञान रूपी आभूषणोसे जो सुशोभित है, श्रेष्ठतप रूपी मित्र जिसके साथ है, और ध्यान रूपी घोडेकी पीठ पर जिस का अत्यन्त मनोहर शरीर शोभायमान है। ऐसा यह वर यदि श्रेष्ठ मोक्ष रूपी लक्ष्मी केसाथ विवाह करना चाहता है। तो उस सुन्दर वर्ण वा अक्षर रूपी मनोहर पुष्पोसे सुशोभित और

हे प्रभो ! आपकी भक्तिके वश होकर मेरे द्वारा आपके गुणोंसे गूंथी हुई इस स्तोत्र रूपी मालाको धारण करना चाहिये । इस स्तोत्र रूपी मालाको अपने कण्ठमें धारण कर (इस स्तोत्रको कण्ठस्थ कर) वह नर अपने आप मुक्ति रूपी लक्ष्मीको वरण करता है । अर्थात् मुक्ति रूपी लक्ष्मीके साथ उसका अपने आप विवाह हो जाता है ॥१८९-१९०॥

सामान्यशब्दवनजातविचित्रपुष्पै-
र्यान्त्रैर्विविधदोषयुतै रसाढ्यैः ।
संसर्गतस्तव जिनेन्द्र ! परैः पवित्रैः
ज्ञानादिसद्गुणमनोहरगुंफितैश्च ॥१९१॥

भक्त्या कृतां सकलमङ्गलदानदक्षां
स्तोत्रस्रजं मृदुलनव्यहृषीकरम्याम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
न मानतुंगमिव सा समुपैति लक्ष्मीः ॥१९२॥

अर्थ—हे भगवन् ! इस स्तोत्रमालामें साधारण शब्द रूपी वनमें उत्पन्न हुए नानाप्रकारके पुष्प हैं, ये शब्द रूपी पुष्प यद्यपि अनेक प्रकारके दोषोंसे भरे हुए हैं, तथापि रसीले हैं, और अर्थ पूर्ण हैं । हे जिनराज ! ये शब्द रूपी पुष्प आपके

शान्तिसागर पर्यन्त होनेवाले समस्त मुनियो को मैं नमस्कार करता हू ॥१६४॥

मोक्षं गते जिने वीरे जगद्वन्द्ये महाप्रभौ ।
चतुर्विंशातिसख्यातशते षष्ठितमे समे ॥१९५॥
पौषमासे शुक्लपक्षे पौर्णमास्यां रवौ दिने ।
स्थित्वा मैनपुरीमध्ये लिखितेयं स्वभावना ।१९६।

अर्थ—जगतवन्द्य और महा प्रभु ऐसे भगवान् वर्द्धमान स्वामीके मोक्ष जाने पर चौवीस सौ साठवे वर्षमें पौष शुक्ला पौर्णमासी (सिती पौषशुक्ला १५ स० २४६० श्री वीर निर्वाण) रवीवार के दिन मैनपुरीमे रह कर यह अपनी भावना लिखकर पूर्ण की ॥१६५–१६६॥

शान्तिसागरशिष्येण सुधर्मासिन्धु बन्धुना ।
सहोदरेण विदुषो मक्खनलालशास्त्रिणः ।१९७।
आग्रामण्डलमध्यस्थचावलीग्रामवासिना ।
तोतारामतनूजेन मेवादेवीसुसूनुना ॥१६८॥

पद्मावतीपुरवालसज्जातिकुलशोभिता ।
धर्मरत्नविशिष्टेन लालारामेण शास्त्रिणा ।१९९।
राजेन्द्रस्य स्वपुत्रस्य पठनार्थं कृता मया ।
भक्तामरपदापूर्ति र्जीयादाचन्द्रमण्डलम् ।२००।

अर्थ—मैं आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर स्वामीका शिष्य हूं मुनि श्री १०८ सुधर्मसागर का सहोदर भाई हूं। वर्तमान समयमें सर्वोत्तम धार्मिक विद्वान् वादीय केसरी-न्यायालंकार पं० मक्खनलाल शास्त्री आनरेरी मजिस्ट्रेटका सहोदर बड़ा भाई हूं। आगरा जिलाके चावलीगांव का रहनेवाला हूं, लाला तोतारामजीका पुत्र और मातामेवादेवीका सुपुत्र हूं। मैं पद्मावतीपुरवाल नामकी सज्जाति और सत्कुल मे उत्पन्न हुआ हूं। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्म संरक्षिणी महासभाने मेरे साथ "धर्मरत्न" की उपाधि बाध दी है, और शास्त्रीकी उपाधि मैंने स्वयं उपार्जनकी है। यह संक्षिप्त मेरा परिचय है। लालाराम मेरा नाम है। मैंने अपने आत्मज चि० राजेन्द्रकुमारके पढ़नेके लिये यह भक्तामरके पदोंकी समस्यापूर्ति की है। यह समस्यापूर्ति जब तक चन्द्रमण्डल बना रहे तब तक चिरजीव रहे ॥१९७-१९८-१९९-२००॥

निर्दोषाय जिनेन्द्राय नाभेयाय महात्मने ।
भक्त्यैव गुंफिता माला भक्तामरपदाश्रयात् २०१।

अर्थ—अठारह दोषोसे रहित, परम महात्मा, भगवान् वृषभदेव जिनेन्द्रदेवके लिये भक्तामरके पदोका आश्रय लेकर मैने यह माला केवल भक्तिसे ही गूंथी है ॥२०१॥

नाऽहं विद्वान् न प्रज्ञावान् शास्त्रज्ञो न च पण्डितः ।
जिनभक्तिवशादेव कृतेयं वृषभस्तुतिः ॥२०२॥

अर्थ—मैं न तो विद्वान् हू न बुद्धिमान हूं और न अनेक शास्त्रोका ज्ञानकार पंडित हू । मैंने केवल भगवान् जिनेन्द्रदेवकी भक्ति के वश होकर ही यह भगवान् वृषभदेवकी स्तुतिकी है ॥२०२॥

जिनभक्तिसमा लोके स्वात्मशुद्धिर्न वर्तते ।
समन्तभद्रो भक्त्यैव तीर्थकर्ता भविष्यति ।२०३।

अर्थ—इस संसारमे भगवान जिनेन्द्रदेवकी भक्तिके समान और कोई अपने आत्माकी शुद्धि नही है । भगवान समंतभद्र आचार्य जिनभक्तिके ही कारण आगे तीर्थङ्कर होनेवाले हैं ॥२०३॥

सैषा जिनेन्द्रभक्तिर्मे भूयान्निर्वाणदायिनी।
मम धर्मगुरुर्जीयात्सूरिः श्रीशांतिसागरः ॥२०४॥

अर्थ—यही यह भगवान जिनेन्द्रदेवकी भक्ति मुझे मोक्ष देनेवाली हो। तथा मेरे धर्म गुरु आचार्य श्रीशान्तिसागर स्वामी चिरकाल तक जीवित रहें ॥२०४॥

समाप्त